कुपोषित बचपन

विभिन्न आयामों में गहराता खतरा

एक नज़रिया

शीर्षक	:	कुपोषित बचपन
प्रकाशक	:	**विकास संवाद** ई-7/226, प्रथम तल, धनवंतरी कॉम्पलेक्स के सामने, अरेरा कॉलोनी, शाहपुरा, भोपाल (मध्यप्रदेश)
फोन	:	फोन : 0755-4252789
ई-मेल	:	vikassamvad@gmail.com
वेबसाईट	:	www.mediaforrights.org
संस्करण	:	प्रथम / 2011
प्रतियाँ	:	1000
लेखन	:	सचिन कुमार जैन
सम्पादन सहयोग	:	सौमित्र राय
मुद्रक	:	एम.एस.पी. ऑफसेट 64, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल. मो. : 98272 98040
आवरण आकल्पन	:	शिरीष श्रीवास्तव

शुरुआत में ...

म.प्र. के सतना ज़िले के मझगवां ब्लॉक के किरहाईपुखरी ग्राम की सिंघपुर पंचायत में पांच बच्चे – प्रमोद, रीना (आयु तीन वर्ष), रामदारे (आयु 4 वर्ष), मंदाकिनी (आयु 4 वर्ष) कृष्णा (आयु ढाई वर्ष) कुपोषित पाये जाते हैं। इससे पहले 2008–09 में केवल इसी गांव में कुपोषण से सात बच्चों के मरने की खबर थी। इसके बावजूद प्रशासन की उदासीनता और अनदेखी इसी बात से सिद्ध होती है कि न तो सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम ठीक से चलाये जा रहे थे और न ही स्वास्थ्य व पीने के साफ पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं प्रदान की जा रही थीं। सरकारी उदासीनता कुपोषण को जन्म देती है। फलस्वरूप और अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार होते हैं। इस तरह कुपोषण का दुष्चक्र बनता है।

यह दुखद तथ्य भी सामने आया कि छह साल से कम आयु के सारे बच्चों को सामान्यतया किसी आंगनवाड़ी केन्द्र से मिलने वाली टीकाकरण व सम्पूरक आहार की सुविधा भी नहीं मिली थी, क्योंकि उनके गांव में ऐसा कोई केन्द्र ही नहीं था। एन.सी.पी.सी.आर. की टीम के अनुमान के अनुसार छह वर्ष से कम आयु के करीब 70 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का दंश झेल रहे थे।

19 मार्च 2010 को यह खबर मिली कि कुपोषण के चलते 16 महीने के नांचू की मृत्यु हो गयी। जांच–परीक्षणों के बाद नांचू को ग्रेड–3 के कुपोषण (अत्यधिक कुपोषित) से ग्रस्त पाया गया था। पोषण पुनर्स्थापन केन्द्र (एन.आर.सी.) में भी बच्चे का इलाज करने से मना कर दिया गया, क्योंकि केन्द्र के पास एक भी खाली पलंग न था। नांचू को कोई चिकित्सा सुविधा नहीं मिली। नतीजतन उसकी मौत हो गई। इसके बाद आंगनवाड़ी केन्द्र की सूची से उसका नाम काट दिया गया। इसलिए, क्योंकि अधिकारियों को इस मामले में अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला जो झाड़ना था।

जनस्वास्थ्य सेवाओं के सिरे से नदारद होने व अधिकारियों की उदासीनता के कारण गरीब ग्रामीणों के पास नीम–हकीमों का सहारा लेने के सिवा कोई और रास्ता नहीं बचता।

किरहाईपुखरी गांव मुख्य रूप से मवासी जनजाति के 42 घरों की बसाहट है। सारे परिवार भूमिहीन हैं। सिवाय उन सात परिवारों के जो पास के जंगल में स्थित छोटे रकबों के मालिक हैं। करीब 60 साल पहले यह जनजाति गांव में आकर बसी थी। गांव के लोग जंगल में ठाकुरों या यादवों के खेतों में मज़दूरी करते हैं। पांच–छह यादव व ठाकुर जमींदार क्रमशः 7 व 20 एकड़ ज़मीन के मालिक हैं, लेकिन कहा जाता है कि ठाकुरों के पास ज़मीन पर स्वामित्व के अधिकार नहीं हैं।

गांव की आर्थिक संरचना, जाति–आधारित भेदभाव व सामंतवाद के साए में बनी है। सरकारी बाबुओं को रिश्वत देकर ठाकुरों व यादवों ने ज़मीन पर कब्ज़ा जमाया हुआ है। दूसरी ओर, आज से 10 साल पहले मवासी लोग इस ज़मीन पर अपना जायज़ मालिकाना हक न पा सके, क्योंकि सरकारी अधिकारियों द्वारा कहे जाने पर वे इसके लिए अनिवार्य शुल्क वग़ैरह न भर सके। ऊंची जाति के ज़मींदारों के खेतों पर दिन–भर की हाड़–तोड़ मेहनत के बाद इन मवासियों को बमुश्किल 30–40 रुपए प्रति दिन की दयनीय मज़दूरी ही मिल पाती है – जबकि कृषि के कामों के लिए निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी 114 रु. बनती है। महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कम मज़दूरी दी जाती है। जब कभी मवासी, मज़दूरी की इन दरों को लेकर अपने भू–स्वामी से शिकायत करते हैं, तो उन्हें टका सा जवाब मिलता है, ''तुम लोगों के लिए इतना ही काफी है!''

ग्रामीण प्रशासन गांव में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की बजाय इस भेदभाव व शोषण को जारी रखे हुए है। खासतौर से वन विभाग में काम करने वाले अधिकारी तो मवासी जनजाति के विरुद्ध भेदभाव बरतते हुए भ्रष्टाचार में लिप्त रहे हैं। ये अधिकारी समय–समय पर गांव में आकर मवासियों द्वारा उगायी गयी फसलों को बर्बाद कर देते हैं। सभी मवासी हमेशा आतंकित रहते हैं, और उनकी महिलाओं के साथ लगातार बदसलूकी की जाती है। इस संबंध में दिनांक 9 सितम्बर, 2010 को सात परिवारों ने वन अधिकारियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करायी है।

– एशियन ह्यूमन राइट्स कमीशन द्वारा प्रकाशित
'हंगर एलर्ट', 9 नवम्बर, 2010

1. एक वैचारिक ढांचा

बचपन की भुखमरी, दरअसल बचपन की विभिन्न अवस्थाओं में सही मात्रा में और पोषण गुणवत्ता के हिसाब से भोजन न मिलने का त्रासद परिणाम होता है। शैशवकाल में भोजन और पोषण के अभाव के ये विभिन्न चरण हैं – मातृत्व के शुरुआती दिनों में भोजन–पोषण सुरक्षा, शिशु को जन्म के तुरन्त बाद स्तनपान और 18 साल की उम्र तक उसे उचित आहार–पोषण मिलते रहना। लेकिन इस पूरी अवधि में बाल भुखमरी पर सबसे ज्यादा ध्यान दिए जाने की जरूरत है, क्योंकि जन्म के बाद नवजात और शिशु की खाद्य–असुरक्षा (जन्म–बाद पहले साल में भुखमरी) सबसे ज्यादा होती है और यही देश में दो–तिहाई से अधिक बाल–मृत्यु का कारण है।

क्या है बाल कुपोषण

ब्रिटिश कॉन्साइज़ इनसाइक्लोपीडिया में इसे ''अपर्याप्त भोजन अथवा पोषक तत्वों को अवशोषित करने या पचाने में असमर्थता के चलते पैदा होने वाली स्थिति बताया गया है। मुमकिन है कि शिशु को दिया जाने वाला आहार उसे सही कैलोरी या प्रोटीन नहीं उपलब्ध करा पा रहा हो। यह भी संभव है कि इस आहार में एक या इससे अधिक विटामिन व खनिज तत्वों की कमी हो। इससे शिशु को आगे चलकर कुपोषण से जुड़ी कुछ खास तरह की बीमारियां (बेरीबेरी, पेलाग्रा, रिकेट्स, व स्कर्वी) हो सकती हैं। कुपोषण के चलते शिशु के पाचन तंत्र, लिवर, किडनी पर असर पड़ सकता है, साथ ही लाल रक्त कोशिकाओं के चयापचय–सम्बंधी दोष पैदा होने से उम्र के साथ वह पोषक तत्वों को ठीक से पचा नहीं पाता।''

चूंकि बच्चा खुद अपने भोजन संबंधी अधिकार को सुनिश्चित नहीं कर सकता, इसलिए खाद्य उत्पादन, सरकारी खरीद, वितरण और अंततः उसे शिशु को खिलाने तक की पूरी प्रक्रिया में पर्याप्त पोषण की जिम्मेदारी समाज व राज्य की है। हम मानते हैं कि इस प्रक्रिया में राजनीतिक और नीतिगत अनदेखी से कुपोषण की स्थिति पैदा हो जाती है, जो कि आगे चलकर गंभीर भुखमरी का भयावह रूप धर लेती है। देश के मौजूदा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे में जब कभी बच्चे की भोजन व पोषण संबंधी जरूरत को समझा और सम्मान के साथ पूरा नहीं किया जाएगा, तब तक बच्चे इसी तरह भुखमरी के

खाद्य सुरक्षा

'खाद्य सुरक्षा का अर्थ है समाज के सभी नागरिकों के लिए हर समय भोजन की पर्याप्त उपलब्धता, जो सांस्कृतिक तौर पर सभी को मान्य हो और उन्हें हासिल करने के समुचित माध्यम गरिमामय हों'

भोजन के अधिकार का उल्लंघन

भोजन के अधिकार का उल्लंघन एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाता है जहां कुपोषण, बहिष्करण और हानि का उद्भव होता है। खाद्य सुरक्षा के इस संदर्भ में राज्य की जवाबदेय भूमिका होती है। राज्य को यह सुनिश्चित करना होता है कि कोई भी व्यक्ति, बच्चा, महिला या पुरुष भूखा या कुपोषित न रहे।

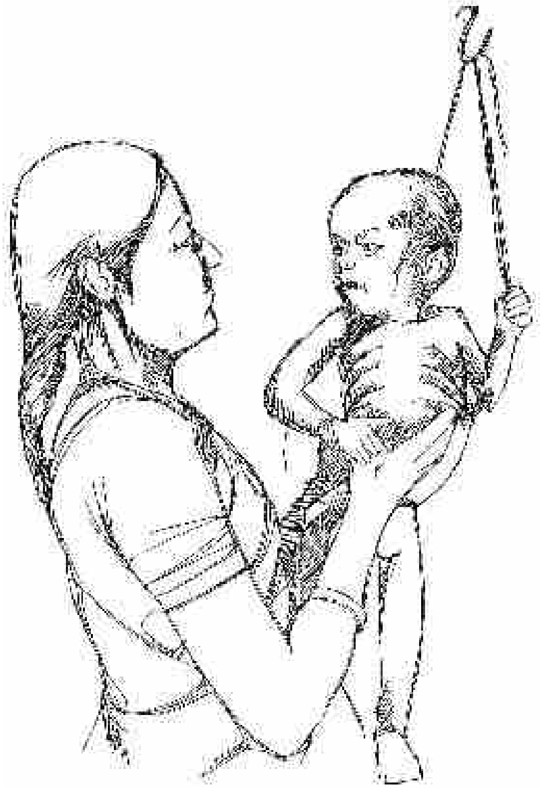

सबसे ज्यादा शिकार बनते रहेंगे। इस तरह यह मसला एक मासूम बच्चे का अमानवीय तरीके से बहिष्कार और उसे जीवन के मूलभूत अधिकार से वंचित करने जैसा है।

बाल्य–भुखमरी की वर्तमान स्थिति को मूलतः संयुक्त राष्ट्र के सम्बद्ध समझौतों के द्वारा निर्धारित 'खाद्य–अधिकार' व 'भूख से मुक्ति' के निर्णायक संदर्भ में देखा जाना चाहिये। आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों का प्रतिज्ञापत्र (सी.ई..एस.सी.आर.) अपने छठे पैराग्राफ की सामान्य टिप्पणी नं. 12 में स्पष्ट करता है, ''भोजन का अधिकार तभी फलीभूत होता है, जब समुदाय में या अपने निजी स्तर पर, प्रत्येक पुरुष, महिला, व बच्चे को, हर समय पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो या फिर उसकी प्राप्ति के साधन मुहैया हों।'' 'भोजन का अधिकार' पर संयुक्त राष्ट्र की विशेष संवक्ता द्वारा यह परिभाषा और भी विकसित की गयी है।

इसके अनुसार, ''भोजन के अधिकार का मतलब है, प्रत्यक्ष तरीके से या वित्तीय साधनों के ज़रिए अप्रत्यक्ष ढंग से नियमित, स्थायी, व निर्बाध प्राप्त, मात्रा व गुणवत्ता के लिहाज़ से पर्याप्त व भरपूर ऐसा भोजन, जो उपभोक्ता के समुदाय की व सांस्कृतिक खान–पान सम्बंधी परम्पराओं के हिसाब से हो, और जिसे ग्रहण कर, व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर, शारीरिक व मानसिक रूप से एक संतुष्ट, गरिमामय व निडर जीवन जीया जा सकता हो।''

सी.ई.एस.सी.आर. टीप 12 पैरा 8 व 13, के अनुसार आहार–अधिकार की प्राप्ति के लिये ये चीज़ें ज़रूरी हैं : भोजन की पर्याप्त मात्रा व गुणवत्ता में उपलब्धता; भोजन की अभिगम्यता यानी कि व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर पर्याप्त भोजन को प्राप्त कर सकने की आर्थिक व भौतिक योग्यता। आहार–अधिकार की नियामक विषय–वस्तु की ऐसी अवधारणा के बल पर ही खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। विश्व खाद्य सुरक्षा पर रोम उद्घोषणा (1996) के हिसाब से खाद्य सुरक्षा तभी हासिल की जा सकती है जब ''एक सक्रिय व स्वस्थ जीवन बिताने के हिसाब से सारे लोग हर समय, अपनी आहार–सम्बंधी ज़रूरतों व अपनी प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिहाज़ से पर्याप्त, निरापद व पौष्टिक भोजन पाने की आर्थिक व भौतिक क्षमता रखते हों।''

हमें इन्हीं विवरणों व परिभाषाओं के संदर्भ में बच्चों हेतु खाद्य सुरक्षा को दृष्टिगत रखना होगा। यानी एक ऐसा बाल–केन्द्रित तरीका जो सभी बच्चों की खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में ऊपर उल्लिखित तमाम

आवश्यकताओं व प्रतिबद्धताओं को सर्वोपरि रखे। बच्चों की खाद्य सुरक्षा का सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है, ताकि माताएं अपने जिगर के टुकड़े को उसके जीवन का सबसे पहला सबक, यानी भूख के साथ जीने का तरीका सिखाने पर मजबूर न हों।

आज की भूख, कल का पिछड़ापन

बच्चों की भुखमरी समाज में एक ऐसा वर्ग खड़ा करती है, जिसे कमज़ोर और अनुत्पादक मानकर विकास की मुख्यधारा से बाहर कर दिया जाता है। इस वर्ग के विकास की जरूरत को यह कहकर नकार दिया जाता है कि इन्हें केवल सेवा या समर्थक की भूमिका ही तो निभानी है। इसके लिए आधा पेट खाना ही काफी है। आज का विकास व्यक्तिगत कौशल और क्षमताओं की बुनियाद पर खड़ा है और यही आगे बढ़ने की शर्त भी है। परन्तु कुपोषण का जाल बच्चों को विकास की दौड़ में कहीं टिकने नहीं देगा। हमारा समाज भूख की अभिव्यक्ति के लिये भाषा चाहता है, पर वह बच्चों की भाषा को नहीं समझता। यह शिशु की आंखों से निकल रहे आंसुओं की भाषा है। वे हाथ–पैर हिलाकर भोजन मांगते हैं। भुखमरी की कगार पर पहुंच चुके बच्चे अपनी जरूरत न आंसुओं से बता पाते हैं, और न ही हाथ–पैर हिलाकर। शून्य हो जाती हैं उनकी आंखें। वे मर कर बता जाते हैं कि उनकी भाषा हम समझ ही नही पाए।

हम सरकार के भीतर बच्चों के जीवन के अधिकार के लिए परस्पर समन्वय और व्यापक नज़रिए के लिए वकालत करते रहे हैं। लेकिन क्या विकास की मौजूदा बहस या संघर्षों में हम बच्चों के पोषण और खाद्य सुरक्षा को एक साथ जोड़ कर देख पाये हैं? विस्थापन की शिकार आबादी में 44 फ़ीसदी की उम्र 18 वर्ष से कम और 16 फ़ीसदी की उम्र 6 वर्ष से कम होती है। विस्थापन के कारण होने वाले अधिकारों के हनन की मार सबसे पहले बच्चों पर पड़ती है। वे तो अपने ऊपर हुए भावनात्मक आघात को व्यक्त भी नहीं कर पाते हैं। यह विस्थापन उनसे अपनी सांस्कृतिक पहचान तो छीन ही रहा है, बल्कि उन्हें प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित जीवनशैली से भी वंचित कर दे रहा है। अब वे अपने जंगल, पहाड़, कंदमूल, औषधियों और पर्यावरण के बारे में नहीं जान पाते हैं। विस्थापन से प्रभावित बच्चों में कुपोषण और मृत्यु दर भी तुलनात्मक रूप से बढ़ी हुई पायी जाती है। अब तक यह माना जाता है कि देश में विस्थापित होने वाले कुल व्यक्तियों की संख्या 6 करोड़ से ज्यादा है। इसका मतलब यह है कि इनमें से

सुप्रीम कोर्ट की ओर से

पीयूसीएल बनाम केन्द्र सरकार एवं अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर चिंता जताई थी कि हम समाज के कमजोर वर्ग तथा गरीब व बेसहारा लोगों को भूख और भुखमरी से तड़पता हुआ न देखें। ऐसा होने से रोकना सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी है; फिर वह चाहे केन्द्र सरकार हो या राज्य सरकार। इसे कैसे सुनिश्चित किया जाएगा, यह नीतिगत मामला हो सकता है जिसे सरकार पर छोड़ देना चाहिए।

अदालत को हर तरह से यह संतुष्टि दिलाई जानी चाहिए, जिसे चाहे कोई भी सुनिश्चित करे कि गोदामों में बेहिसाब भरे हुए अनाज, खासकर भारतीय खाद्य निगमों के गोदामों में भरे अनाज तथा लावारिस पड़े अनाज को समुद्र में फेंककर या चूहों को खिलाकर बरबाद नहीं किया जाएगा। बिना किसी क्रियान्वयन के कोरी योजनाएं बनाना किसी काम का नहीं होता। ज्यादा जरूरी यह है कि खाद्यान्न हर हाल में भूखे व्यक्ति तक पहुंचना ही चाहिए।

खाद्य असुरक्षा क्यों महत्वपूर्ण है?

- यह माना जाता है कि एक वर्ष से छः वर्ष के को हर रोज न्यूनतम 1250 से 1650 किलो कैलोरी की आवश्यकता होती है परन्तु विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि बच्चों के बीच कैलोरी का मौजूदा अभाव 550 किलो कैलोरी से 1000 किलो कैलोरी के बीच है।
- इसके दूसरी तरफ वयस्कों के बीच कैलोरी का अभाव मौजूदा औसत अनिवार्य ऊर्जा से काफी कम है। यह अभाव लगभग 600 से 900 किलो कैलोरी के बीच है।

लगभग एक करोड़ की उम्र 6 वर्ष से कम और ढाई करोड़ की उम्र 18 वर्ष से कम रही है। विकास के लिए इन बच्चों की कुछ ख़ास जरूरतें होती हैं, लेकिन सवाल यह कि क्या उनकी जरूरतों का ख्याल रखा गया? बेरोजगारी और आर्थिक बदहाली के कारण बढ़ रहा पलायन उनके जीवन में चुनाव का कोई विकल्प ही नहीं छोड़ रहा है। यह बदहाली इतनी ज्यादा है कि परिवार रोजी–रोटी की तलाश में अपने दो–तीन माह के शिशुओं के लेकर पलायन करने पर मजबूर हैं। ऐसे स्थानों पर भी, जहां न कोई संरक्षण है, न स्वास्थ्य सेवा। खाद्य सुरक्षा उन ठेकेदारों के भरोसे है, जो महिला मजदूरों को अपने बच्चों को इसलिए दूध नहीं पिलाने देते, क्योंकि उनके मुताबिक इससे समय व श्रम की बर्बादी होती है। नतीजतन, पत्थरों और कांक्रीट के बीच इसी तरह यह भूखा बचपन पनपता है।

जन्म के समय शिशु का कम वजन भी उसकी ताउम्र अस्वस्थता का बड़ा कारण होता है। गर्भावस्था के समय उचित आहार न मिलने और घरेलू हिंसा की शिकार होने के कारण महिलाओं के साथ–साथ बच्चों की स्थिति भी खराब हो रही है। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं के बच्चों में स्नायु तंत्र से सम्बन्धित रोगों के मामले बढ़े हैं। राष्ट्रीय पोषण संस्थान की एक रपट के अनुसार वे सभी बच्चे जिनका जन्म के समय वजन कम था, अधिकांश गरीब परिवारों से आते थे। एक तिहाई बच्चों की मौत जन्म के समय कम वजन के कारण ही होती है। पोषण की कमी के चलते बच्चों में तपेदिक (टीबी) जैसे संक्रामक रोगों के बढ़ते प्रभाव को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

परिभाषाओं से कहीं आगे का मुद्दा है बाल–भुखमरी

2. बच्चे : भोजन के हकदार!

सबसे पहला बुनियादी सवाल तो यही है कि अपने आहार के प्रति बच्चों का कोई हक बनता भी है या नहीं? जी हां, बिलकुल बनता है। अपने तमाम प्रकारों व विविध रूपों में भूख के वर्तमान स्तर भारतीय संविधान में दर्ज प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का हनन करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी एक जनहित याचिका (पी.यू.सी.एल. बनाम भारत सरकार व अन्य) में बार–बार यह तथ्य स्थापित किया है कि खाद्य सुरक्षा जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में जीने के हक को इंसान का मूलभूत अधिकार बताया गया है। इसके अनुसार, ''कानून की किसी अपवादस्वरूप प्रक्रिया

के अलावा किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता।''

संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है, '' सरकार को छह साल की उम्र तक के सभी बच्चों की बाल्यकाल से जुड़ी सारी देख–रेख और शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने की जवाबदेही निभानी होगी। '' जबकि अनुच्छेद 47 कहता है, ''अपने नागरिकों का पोषण–स्तर व उनका जीवन स्तर सुधारना तथा जन–स्वास्थ्य की बेहतरी को सरकार अपना प्राथमिक कर्तव्य मानेगी। उसकी जिम्मेदारी चिकित्सकीय उद्देश्यों के अलावा, ऐसे नशीले पदार्थों व औषधियों के उपभोग पर प्रतिबंध लगाने की भी होगी, जो स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।''

पी.यू.सी.एल. बनाम भारत सरकार व अन्य के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने साफ तौर पर कहा है – ''न्यायालय इस बात को लेकर चिन्तित है कि समाज के निर्धन व बेसहारा व कमज़ोर तबके भूख व भुखमरी से न पीड़ित रहें। भूख और भुखमरी को रोकना सरकार – केन्द्र व राज्य, दोनों की प्राथमिक ज़िम्मेदारी बनती है। अब यह सब कैसे सुनिश्चित हो, एक नीतिगत मसला है जिसे सरकार को सुलझाना होगा। न्यायालय तो यह सुनिश्चित करना चाहती है कि सरकारी गोदामों में भरा पड़ा अनाज न तो समुद्र में फिंके और न ही चूहों का भोजन बने। बिना क्रियान्वयन के नीतियां निरर्थक हैं। महत्वपूर्ण यह है कि खाद्यान्न उन लोगों तक पहुंचे जो भूख और भुखमरी के शिकार हैं।'' इसी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार से कहा है कि वह अपनी अत्यंत महत्वपूर्ण समेकित बाल विकास सेवाओं (आई.सी.एस.डी.एस.) का सर्वव्यापीकरण करे। इसका आशय है कि छह साल तक के हर बच्चे को आई. सी.डी.एस. के तहत सभी छह सुविधाएं गुणात्मक रूप से पाने का अधिकार है। इसके साथ न्यायालय यह भी हवाला देता है कि देश की सभी बसाहटों में एक–एक आई.सी.डी.एस. केन्द्र होना चाहिये। उपरोक्त सभी बातों के अलावा, भूख का वर्तमान स्तर उन तमाम अन्तर्राष्ट्रीय उद्घोषणाओं व चार्टरों का सरासर उल्लंघन है, जिन पर भारत ने हस्ताक्षर किये हैं।

3. बच्चों के पोषण सम्बंधी अधिकारों को परिभाषित करने वाली प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएं और संधियाँ

''मानव अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र की सर्वव्यापी घोषणा कहती है, ''हरेक व्यक्ति को अपने व परिवार

कुपोषण से गरीबी और गरीबी से कुपोषण का चक्र

- कुपोषण से व्यक्ति को होता है अपनी आजीविका कमाने की क्षमता में 10 प्रतिशत का नुकसान।
- जीडीपी को होता है 2–3 फीसदी का नुकसान।
- शिशुओं की ऊंचाई में 4.6 सेमी की कमी।
- स्कूलों में मिलने वाले ग्रेड में 0.7 का नुकसान।
- स्कूल शुरू करने में 7 माह की देरी।

की भलाई व बेहतर स्वास्थ्य के लिए ऐसे जीवन–स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है, जिसमें रोटी, कपड़ा, मकान व स्वास्थ्य सेवा व आवश्यक सामाजिक सुविधाएं शामिल हैं। इसके अलावा आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समझौते के अधिनियम 11 के अनुसार, ''(1) इससे जुड़े सारे देश अपनी जनता को पर्याप्त आहार, वस्त्र, आवास सहित एक यथेष्ठ जीवन–स्तर व इसमें लगातार बेहतरी करने के प्रत्येक नागरिक व उसके परिवार के अधिकार को मान्यता देते हैं; (2) सारे देश अपने यहां हर व्यक्ति की भूख से मुक्ति सम्बंधी मूलभूत अधिकार को मान्यता प्रदान करते हैं।'' लेकिन बच्चों के लिए ये प्रावधान ठीक ऐसे नहीं हैं। बच्चों की विशेष परिस्थितियों व आवश्यकताओं के संदर्भ में ही इन्हें देखा व आत्मसात किया जाना चाहिये, कारण कि आहार व पोषण सम्बंधी उनके नैसर्गिक अधिकार ही उनकी उत्तरजीविता, विकास व गरिमा की नींव हैं।

बाल–अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समझौते (1989) की धारा 24 पोषण–सम्बंधी बच्चों के अधिकार की साफ तौर पर व्याख्या करती है। यह प्रतिज्ञा–पत्र कहता है, ''इस पर दस्तखत करने वाले सभी देश इस अधिकार का पूर्ण क्रियान्वयन सुनिश्चित करें और खासतौर पर इसके लिए उपयुक्त कदम उठायें। जैसे रोग एवं कुपोषण से निपटने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य के ढांचे में अन्य बातों के साथ–साथ तुरन्त उपलब्ध टेक्नोलॉजी का प्रयोग व पर्याप्त पौष्टिक आहार व पीने का साफ पानी मुहैया कराना।''

खाद्य एवं कृषि संगठन बाल–अधिकारों पर समझौते (सी.आर.सी.) का हवाला देता है। इसके अधिनियम 21 (1) में कहा गया है कि ''सभी बच्चों को एक ऐसा जीवन जीने का अधिकार है, जो उनके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक व सामाजिक विकास के हिसाब से पर्याप्त हो।'' हस्ताक्षरकर्ता देशों से सी.आर.सी की अपेक्षा है कि वे बाल–कुपोषण को खत्म करेंगे (अधिनियम 24 (2)(सी)); ''खासकर पोषण के संदर्भ में'' एक अच्छे जीवन–स्तर हेतु बच्चों के अधिकार के क्रियान्वयन के प्रति माता–पिता के प्राथमिक कर्तव्य पालन में मददगार होने में 'उपयुक्त कदम उठायेंगे (अधिनियम 27 (3))।''

4. बाल–केन्द्रित नजरिये की ज़रूरत

खाद्य असुरक्षा इस समय एक प्रमुख राजनीतिक समस्या है। लेकिन समस्या को सुलझाने के बजाय इसे लेकर की जा रही तमाम चिंताओं को भी खत्म करने की प्रवृत्ति नजर आने लगी है। जब भी देश के लाखों–करोड़ों बच्चों की खाद्य असुरक्षा के रूप में कड़वी सच्चाइयां सामने आती है, तो समस्या के सारे

बिंदु आपस में नहीं जुड़ पाते। इस वैचारिक विरोधाभास के चलते पीढ़ी–दर–पीढ़ी कुपोषित बच्चे पैदा हो रहे हैं। इससे हमारी नीति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है।

हम ने एक ऐसी व्यवस्था खड़ी कर ली है, जिसमें अधिकांश लोग भूखे पेट ही उम्र का फासला तय करते हैं। कुल मिलाकर हमने एक कुपोषित समाज का निर्माण किया है। खासकर बच्चों के संदर्भ में, इस लम्बी चलती आयी भूख को, जब तक हम यूं ही बदस्तूर कायम रखेंगे, पालते–पोसते रहेंगे और इसे एक अहम राजनैतिक मुद्दा नहीं बनने देंगे, जैसा कि इसे होना चाहिये, तब तक हम लगातार बढ़ती विषमता व शोषण को एक विशुद्ध ''भारतीय अंदाज़'' में बरकरार रखने की कोशिश कर रहे होंगे। यह वही ठेठ भारतीय तरीका है, जब हम कहते हैं कि हमारा राजतंत्र बच्चों की परवाह नहीं करता। इसका मतलब है कि अव्वल तो हमारा समाज ही अपने बच्चों की परवाह नहीं करता। सो, यदि हमारा तंत्र ही असंवेदनशील है तो इसका मतलब है कि हमारा समाज भी ऐसा ही है। राज्य–व्यवस्था और सरकारी ढांचे का उद्भव हमारे समाज से ही होता है।

हमारी राजनैतिक प्रणाली भी कुछ ऐसी है कि वह कमज़ोर, अनुत्पादक तबकों को नकारती रहती है, जैसे कि बच्चे। यह हमारी सांस्कृतिक असंवेदनशीलता से उपजती है। समय के साथ यह प्रवृत्ति हमारी राजनैतिक व प्रशासनिक सोच पर एक खास तरह के आर्थिक मॉडल के हावी हो जाने से और भी पैर जमा बैठी। बच्चे सरकारें नहीं बनाते और न ही वे उन नीतियों को बनाते हैं, जो उन पर प्रभाव डालने वाली हैं। सरकारें हम बनाते हैं, लेकिन खुद हम ही अपने बच्चों को सम्पूर्ण नागरिकों का दर्जा नहीं देते। देश पर हुकूमत चलाने वाले राजनेताओं ने जो आर्थिक तंत्र चुना है, वह भी तथाकथित 'अनुत्पादकों' के प्रति संदेह की दृष्टि व असम्मान का भाव रखता है। सरकार की अर्थनीति जब इस असंवेदनशीलता के साथ जुड़ जाती है तो इससे एक ऐसा सधा हुआ विचार पैदा होता है कि जनता का धन बच्चों पर खर्च नहीं किया जाना चाहिये।

बच्चे कभी भी इस व्यवस्था का अंग नहीं बन पाते, क्योंकि वे विकास, या कम से कम फौरी विकास में तो अपना कोई योगदान नहीं देते। सत्ता–केन्द्रित राजनीति का संकुचित दृष्टिकोण हमें इस सहज बुद्धि से भी परे रखता है कि हमें बच्चों में इसलिए निवेश करना चाहिये क्योंकि वे ही भावी प्रगति के असली कर्णधार हैं।

सारा ध्यान बच्चों पर क्यों हो?

एक बच्चा खुद के भोजन का अधिकार सुनिश्चित नहीं कर सकता। यह समाज तथा राज्य का दायित्व बनता है कि वह बच्चों को पर्याप्त पोषण मुहैया कराए। यह सिलसिला खाद्यान्न के उत्पादन से शुरू होकर उसकी खरीद, वितरण और अंत में बच्चे की जरूरत के मुताबिक उसे भोजन मिलने तक चलना चाहिए।

बच्चों में भुखमरी क्यों है चिंता का विषय?

- बेह्तर पोषण वाले बच्चों की तुलना में भुखमरी के शिकार बच्चों में मौत का खतरा 5 से 20 गुना ज्यादा होता है।
- बेह्द गंभीर कुपोषण बाल मृत्यु का सीधा कारण हो सकता है।
- ऐसे बच्चों में उल्टी दस्त व निमोनिया सरीखी आम बीमारियों के चलते होने वाली मौतों की संख्या में बढ़ोतरी।
- भुखमरी के चलते विकलांगता तथा अभाव व अलग-थलग होने का कुचक्र शुरू हो जाता है।

पेड़ गिराने का काम अगर हमारे जी.डी.पी. में इज़ाफा करता है, तो पेड़ लगाने का क्या फायदा? देखा जाये तो हमें जंगल, ज़मीन व जल जैसे अपने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व उनकी भरपाई के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन आवंटित करने चाहिये। जी.डी.पी. जैसी दूर–दृष्टिविहीन सोच हमें विध्वंसकारी योजनाओं की तरफ ही ले जा सकती है जहां हम यह मानने लगते हैं कि अगर हम स्वस्थ हैं तो अपने जी.डी.पी. में कोई योगदान नहीं देंगे। लेकिन जैसे ही हम बीमार पड़े, हम अस्पतालों, जांच, दवाओं आदि पर खर्च करेंगे जिससे कि हमारी राष्ट्रीय आय बढ़ेगी। जी.डी.पी. एक ऐसा झुनझुना है जो प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व बचाव से नहीं बजता। सो ऐसे में सवाल उठता है कि क्या वाकई संकट, असुरक्षा, भूख और संसाधनों की लूट–खसोट ही हमारी आर्थिक प्रगति के आधार होने चाहिये?

आज हम अपने बच्चों को आत्म–सम्मान के जीवित रख पाने की चुनौती का सामना कर रहे हैं? हमारे देश की आधी महिलाएं खून की कमी से पीड़ित हैं। कंगाली व भेदभाव के चलते पोषण सम्बंधी उनके अधिकारों का हनन होता रहा है। पोषण व सेहत सम्बंधी मूलभूत मानव अधिकारों के अभाव के चलते न केवल उनका जीवन खतरे में है, बल्कि उनकी भावी पीढ़ियों की उत्तरजीविता भी संकटमय हो चली है। यह एक विशाल त्रासदी है कि हर साल हमारे देश में करीब 77,000 महिलाएं मातृत्व सम्बंधी कारकों के चलते मौत का शिकार बनती हैं।

एक हालिया अध्ययन के अनुसार 80 फीसदी मामलों में मातृ–मृत्यु, शिशु– मृत्यु दर का कारण बनती है। लांसेट के अध्ययन के अनुसार एक अत्यधिक कुपोषित बच्चे की डायरिया, निमोनिया, मलेरिया व खसरे से मरने की सम्भावनाएं कहीं अधिक हो जाती हैं। आयु अनुसार कम वज़न होने की सूरत में मरने की सम्भावनायें स्वस्थ बच्चे की तुलना में 9.7 गुना, आयु के हिसाब से कम लम्बाई के मामलों में 4.1 गुना अधिक तथा लम्बाई के हिसाब से कम वज़न होने पर 9.4 गुना अधिक होती है। मतलब साफ है कि कुपोषित बच्चे मौत के मामले में ज़िन्दगी से दूर होते हैं। ये आंकड़े उन बच्चों की दुखद दास्तान कहते हैं जो अत्यधिक कुपोषण के कारण काल–कलवित हो जाया करते हैं। लेकिन उन लाखों–करोड़ों बच्चों का क्या जो इतने 'भाग्यशाली' नहीं होते कि मर जाएं। वे पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपने भूखे बचपन के बावजूद जीवित रहते हैं? समुचित शारीरिक–मानसिक विकास से महरूम, कमजोर, बीमारियों से ग्रस्त। बचपन में इनके भूख की अनदेखी से उपजे ऐसे वयस्क जीवन की गुणवत्ता भला और कैसी होगी?

वैज्ञानिक पड़ताल

- भ्रूण की कमजोर बढ़ोतरी तथा शुरुआती दो वर्षों में उसके अविकसित रहने का नुकसान स्थायी तौर पर होता है। इनमें वयस्कों की कम ऊंचाई, स्कूलों में कम उपस्थिति, वयस्कों की घटती आय तथा शिशुओं का घटता वजन आदि शामिल हैं।
- जीवन के शुरुआती दो वर्षों में अल्पपोषित रहने वाले बच्चों तथा बाद में तेजी से वजन बढ़ने वाले बच्चों में पोषण से संबंधित गंभीर बीमारियों की प्रबल आशंका होती है।

कुपोषण के प्रकार

कुपोषण की तीन पहलुओं से पहचान हो सकती है -

पहलू एक

- **प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषणः** जो किसी एक या सभी पोषक पदार्थों की कमी की वजह से होता है।
- **सूक्ष्मपोषक तत्वों की कमी से होने वाली बीमारियांः** जो किसी खास सूक्ष्मपोषक तत्व की कमी की वजह से होती हैं।

पहलू दो

- क्वाशिओरकर एक अन्य तरह का कुपोषण है जो बेहद कम प्रोटीन वाले आहार की वजह से होता है। इसमें अन्य पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट आदि हो सकते हैं। कई बार लोग जान-बूझकर ऐसे आहार को नियमित तौर पर लेते हैं जिसका नतीजा यह खास प्रकार का कुपोषण होता है।
- मैरास्मस एक अन्य तरह का कुपोषण है जो कैलोरी तथा प्रोटीन दोनों की ही कम मात्रा ग्रहण करने के नतीजे के तौर पर होता है। इस तरह के कुपोषण से प्रभावित बच्चों का वजन व ऊंचाई अपनी ही उम्र के सामान्य बच्चों की तुलना में 80 प्रतिशत तक कम हो सकती है।

पहलू तीन

- अल्प कुपोषण (Mild Malnutrition)
- मध्यम कुपोषण (Moderate Malnutrition)
- गंभीर कुपोषण (Severe Malnutrition)

लांसेट की अध्ययन श्रृंखला कुछ भयावह निष्कर्ष हमारे सामने रखती है :

1. भ्रूण का ठीक तरह से विकास न होने या विकास अवरुद्ध होने से जन्म के शुरुआती दो सालों में कई हानिकारक प्रभाव देखने को मिलते हैं। जैसे कद में कमी, कमतर स्कूली योग्यता, वयस्क होने पर आय में कमी तथा जन्म के समय संतान के कम वजन।

2. ऐसे बच्चे जो अपने जीवन के प्रारम्भिक 2 वर्षों में अल्प-पोषित रहते हैं और बाद में किशोरावस्था तक तेजी से वजन बढ़ा लेते हैं, उन पर कुपोषण-जनित गंभीर बीमारियों का खतरा होता है।

3. इस बात के कोई प्रमाण नहीं हैं कि भ्रूण का विकस कमजोर होने के बावजूद जीवन के प्रारम्भिक दो वर्षों में तेजी से वजन या लम्बाई बढ़ाने वाले बच्चों में गंभीर बीमारियों का ज्यादा खतरा रहता है।

4. मातृत्व व शिशु अल्प-पोषण की रोकथाम एक दीर्घकालीन निवेश है जिससे वर्तमान पीढ़ी ही नहीं, उनकी आने वाली संतानें भी लाभान्वित होंगी।

5. कुपोषण, भूख, व ग़रीबी – जीवन चक्र की राजनीति

मिलेनियम (सहस्राब्दी) विकास लक्ष्यों के आधार पर हमने (राज्य व स्वयंसेवी संगठनों) ने ठानी है कि साल 2015 तक हम धरती से अति–कुपोषण को खत्म कर देंगे और भुखमरी की अत्यधिकता को भी मिटा देंगे। लेकिन ये क्या? ग़रीबी और भूख को परिभाषित करते समय सरकार खुद इन मुद्दों को कालीन के नीचे छिपाने की कोशिश कर गड़बड़झाला कर देती है। प्रो. उत्सा पटनायक का कहना है कि हमारे देश के करीब 76 प्रतिशत परिवार इतना भोजन नहीं पाते कि कैलोरी (ऊर्जा) सम्बंधी उनकी ज़रूरतें पूरी हो सकें। अर्जुन सेनगुप्ता समिति की रिपोर्ट के अनुसार, देश के 83 करोड़ लोग 20 रु. प्रतिदिन या उससे भी कम की हास्यास्पद कमाई पर बमुश्किल गुज़ारा कर पाते हैं। अब सवाल यह उठता है कि इस बदहाली में बच्चों का स्थान कहां है?

ग़रीबी क्या है और कौन गरीब है? यह सवाल अभी तक अनुत्तरित रहता आया है। सिर्फ गरीबी पर बहस करने से गरीबी की समस्या हल नहीं होगी। विशेषज्ञ एक ओर जहां ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के लिए कैलोरी इनटेक (ऊर्जा का ग्रहण) को इसका मापदण्ड मानते हैं, वहीं दूसरी ओर ग़रीबी को परिभाषित करने व इसका आकलन करते समय वे इन मापदण्डों को मानने से इनकार कर देते हैं।

हालांकि शिशु मृत्यु दर, जीवन–प्रत्याशा व शिक्षा, अब मानव विकास सूचकांक माने जाने लगे हैं। लेकिन अब भी इन्हें ग़रीबी के मापदण्ड की मान्यता नहीं दी जाती। तकरीबन 4.5 करोड़ बच्चे बाल–श्रम के कुचक्र में फंसे हुए हैं, और नौ करोड़ बच्चे कुपोषित हैं। कुपोषण के कारण सालाना एक साल से कम आयु के 14 लाख बच्चे और 5 साल से कम आयु वाले 25 लाख बच्चे काल–कवलित हो जाते हैं। देश में 25 करोड़ से भी अधिक महिलाएं खून की कमी से पीड़ित हैं। फिर भी बीपीएल की 'आधिकारिक श्रेणी' में केवल 8.25 करोड़ परिवार ही गिने जाते हैं।

इन सबके बावजूद देश में ग़रीबी के आकलन और उसे परिभाषित करते समय बच्चों की स्थिति और उनके वजूद को नजरअंदाज किया जाता है। लेकिन हर बार यह एक निरर्थक प्रश्न ही साबित होता है। वर्ष 2007 में विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ तथा विश्व खाद्य कार्यक्रम ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया था :

शिशुओं पर ध्यान दें

- देश में होने वाली कुल शिशु मौतों में से दो तिहाई संख्या ऐसे शिशुओं की होती है जो एक वर्ष से भी कम आयुवर्ग के हैं। वहीं इनमें से आधे तो ऐसे हैं जो जन्म लेने के बाद 28 दिन भी पूरे नहीं कर पाते। दक्षिण भारत में महज 24.5 प्रतिशत बच्चे ही ऐसे होते हैं जिन्हें पैदा होने के एक घंटे के भीतर स्तनपान कराया जाता है।
- नवजात शिशुओं की जिंदगी बेहद संवेदनशील होती है तथा उन्हें संरक्षण की महती आवश्यकता होती है, लेकिन आजीविका की तलाश में होने वाले पलायन से इस संरक्षण की बलि चढ़ा दी जाती है।

कुपोषण की जड़ में राजनीतिक अर्थव्यवस्था

हमारे समाज में, हमारी राजनीति में, नागरिक वही हैं जो वोट डाल सकते हैं, जबकि आर्थिक संदर्भ में नागरिक वे हैं जो श्रम कर सकते हैं, अपना काम या अपना करोबार कर सकते हैं। यानी कि इस परिभाषात्मक स्तर पर ही हम अपने बच्चों को अपनी नीतियों के दायरे से बाहर कर देते हैं।

''हर साल गंभीर अति–कुपोषण के चलते करीब 10 लाख बच्चे मारे जाते हैं। कई देशों में बाल मृत्यु दरों को लेकर किये गये हालिया अध्ययनों के आधार पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने गंभीर अति–कुपोषण से पीड़ित बच्चों की मृत्यु दरों का अनुमान लगाया है।

इन मृत्यु दरों से पता चलता है कि अति–कुपोषण के गंभीर मामलों में एक अच्छी तरह से पोषित बच्चे के मुकाबले कुपोषित बच्चे की मृत्यु का जोखिम लगभग 5–20 गुना अधिक होता है। गंभीर अति–कुपोषण और बाल–मृत्यु का प्रत्यक्ष कारण भी बन सकता है, या फिर डायरिया व निमोनिया जैसे बाल रोगों के कारण मरने वाले बच्चों के मामले में एक अप्रत्यक्ष कारण बन जाता है। वर्तमान आकलनों के अनुसार हर साल लगभग 10 लाख बच्चे गंभीर अति–कुपोषण के कारण काल–कवलित हो जाते हैं (इन दिनों विश्व स्वास्थ्य संगठन दुनिया भर में गंभीर अति–कुपोषण से पीड़ित बच्चों की संख्या तथा इससे जुड़ी बाल मृत्यु दर का आकलन करने में जुटा है)।''

देश का आर्थिक विकास व लगातार गहराती भुखमरी की समस्या दोनों का रुझान बढ़ोतरी की ओर है। देश में अपनाए गए विकास का यह एक दिलचस्प उदाहरण है।

विश्व बैंक का एक दस्तावेज़ इस प्रश्न से शुरू होता है – क्या आप जानते हैं कि कुपोषण दुनिया की सबसे गंभीर स्वास्थ्य–समस्या है? कुपोषण के कारण अधिकांश बच्चों की असमय मृत्यु हो जाती है। विश्व बैंक की पोषण विशेषज्ञ मीरा शेखर कहती हैं कि मलेरिया, डायरिया या निमोनिया जैसे रोगों से मरने वाले 60 प्रतिशत बच्चों को समय रहते बचाया जा सकता था; अगर वे कुपोषण का शिकार न होते।

इन सबके बावजूद समस्या से निपटने के लिए जो कुछ भी किया जा रहा है, उसके साथ कुछ बातें चस्पा हैं। जैसे हमें इस तरह के और भी प्रयास करने चाहिये क्योंकि बच्चे देश का भविष्य हैं, कल के नागरिक हैं। अब सवाल यह है कि ''क्या बच्चे हमारा वर्तमान नहीं हैं?क्या आज वे नागरिक नहीं हैं?

अब इस कुचक्र से एक ही तरीके से बाहर निकला जा सकता है, वह है विकास सम्बंधी अपनी प्राथमिकताओं को बदल कर, यानी कि अधोसंरचना के विकास से मानव विकास की ओर उन्मुख होना। यानी एक बाल–केन्द्रित विकास की ओर बढ़ना। बच्चों के मुद्दों की अनदेखी करते समय हम वास्तव में सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को अनदेखा कर रहे होते हैं। इसके साथ ही एक शोषणकारी व

जाति–आधारित व्यवस्था से एक समतामूलक व न्यायप्रिय समाज बनने के अपने रूपांतरण की गति को भी हम थाम रहे होते हैं।

दीर्घकालिक भूख व सामाजिक–राजनैतिक बहिष्कार की वर्तमान स्थिति उन्हें इतना कमज़ोर बना देती है कि वे न तो स्वस्थ वयस्क बनने के काबिल रह जाते हैं और न ही एक स्वतंत्र राजनैतिक इकाई बन पाते हैं। ग़ैर–बराबरी वाला ऐसा राजनैतिक व सामाजिक ढांचा उन्हें हमेशा कर्ज व कंगाली के कुचक्र में फंसाता चलेगा। नतीजतन वे कभी भी इस योग्य न बन पाएंगे कि उस शिक्षा वयवस्था को कोई चुनौती दे सकें, जो एक अ–वैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, जातिवादी तथा भेदभाव–मूलक समाज को बढ़ावा देती है।

6. शिशुओं पर ध्यान देना ही उत्तरजीविता का मंत्र है

बाल–विकास के संदर्भ में प्रारम्भिक बचपन यानी कि शिशु की ज़िन्दगी के पहले छह बरस काफी महत्वपूर्ण होते हैं। छह साल से कम उम्र के बच्चों को अच्छे पोषण व उचित स्वास्थ्य देखरेख की ज़रूरत होती है, ताकि वे आगे चलकर अपनी तमाम उम्र पूरी तरह से स्वस्थ, योग्य व खुशहाल रह सकें। विचारणीय पहलू यह है कि देश में कुपोषित बच्चों की कुल आबादी में से छह साल की उम्र के केवल 11.6 प्रतिशत शिशुओं तक ही रोजाना आई.सी.डी.एस. के ज़रिये सम्पूरक पोषण आहार पहुंच पाता है। जन्म के बाद शिशु के बचने की व उसके जीवन की गुणवत्ता तीन चीज़ों पर निर्भर करती है। इन तीनों बातों का ताल्लुक शिशुओं के सतनपान के आचरण व व्यवहार से रहता है। लेकिन राज्य कार्यक्रमों के ज़रिये डिब्बाबंद आहार को बढ़ावा देने सम्बंधी सरकारी नीति के चलते पोषण की यह वंचना और भी बढ़ी है।

जन्म के तुरन्त बाद का पहला घण्टा नवजात शिशु के लिए एक बड़ा ही निर्णायक समय होता है। इसी दौरान वह बाहर के खुले प्राकृतिक वातावरण में सांस लेता है। और यह एक जाना–माना तथ्य है कि खीस यानी पौष्टिक कोलोस्ट्रम से भरपूर मां का पहला दूध शिशु के पोषण की मज़बूत नींव रखता है। यही नहीं, इसके साथ ही वह शिशु को तमाम बीमारियों व संक्रमणों से लड़ने के लिए बुनियादी रोग–प्रतिकारक मुहैया कराता है। पर यह बड़ा ही दुखद तथ्य है कि एन.एफ.एच.एस. –3 के आंकड़ों के अनुसार भारत में आज भी केवल 24.5 प्रतिशत बच्चों को उनके जन्म के बाद के पहले घण्टे में स्तनपान कराया जाता है। कारगर नीतियों के अभाव व दकियानूसी सामाजिक व्यवहार के कारण हमारे नवजात

शिशु पोषण सम्बंधी अपने प्राकृतिक व ठेठ मूलभूत अधिकार से वंचित रहते हैं। ऐसे में, हमें इस कड़वी सच्चाई को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि पांच साल से कम उम्र में होने वाली मौतों में से आधी तो जीवन के शुरुआती 28 दिनों (चार हफ्तों) में हो जाती हैं।

शिशु जीवन के प्रारम्भिक छह महीने उसके जीवनकाल का दूसरा महत्वपूर्ण चरण हैं। इस दौरान स्तनपान मात्र के द्वारा ही पोषण सम्बंधी उसकी सारी ज़रूरतें पूरी होनी चाहिये। लेकिन अगर इन शुरुआती छह महीनों में शिशु को स्तनपान छुड़वा दिया गया तो फिर वह शिशु ताउम्र कुपोषण का शिकार बना रहता है। भारत में स्तनपान व्यवहार से जुड़ीं सांस्कृतिक परम्पराओं व सामाजिक आचरण को बदलने की चुनौतियों पर ध्यान दिये जाने की सख्त ज़रूरत है। कारण कि आज भी शिशु के प्रारम्भिक छह महीनों में उसे केवल स्तनपान कराने का प्रतिशत काफी कम पाया जाता है।

तीसरा महत्वपूर्ण चरण 6–24 महीनों की अवधि है, जब बच्चे को स्तनपान के साथ–साथ सम्पूरक आहार दिया जाता है। भारत के कुछ भागों में, इस अवधि में या तो बच्चे का स्तनपान एकदम बंद कर दिया जाता है या फिर उसे केवल स्तनपान ही कराया जाता है। ये दोनों ही व्यवहार बच्चे के लिए खतरनाक सिद्ध होते हैं, क्योंकि एक तो वे कुपोषण का शिकार बनते हैं और दूसरे इस कारण उन्हें ऐसे कई नुकसान होते हैं, जिनकी भरपाई नहीं हो सकतीं।

बच्चों में कुपोषण का सामना करने व उससे लड़ने की क्षमता तभी पैदा हो सकती है, जब पोषण व खाद्य–सुरक्षा जैसे उपायों के साथ इस मामले में समय रहते हस्तक्षेप किया जाए। लेकिन अफसोस कि छह वर्ष से छोटे बच्चों के परिप्रेक्ष्य में राजनैतिक इच्छा शक्ति व नीतिगत ढांचे के अभाव में इन तथ्यों की लगातार अनदेखी होती रही है। लेकिन, बाल–पोषण से जुड़े तमाम मुद्दों पर खुले व बेबाक मंचों पर सार्थक विमर्श करने का समय आ गया है।

पोषण का विषय संसार में शिशु के आगमन व उसके जिंदा रहने से सीधे–सीधे जुड़ता है। क्या एक बच्चा इस संसार में स्वस्थ रूप से जन्म लेगा और यदि जन्म लेगा तो क्या फिर वह इसके बाद लगातार एक स्वस्थ व सम्मानजनक जीवन जीने सम्बंधी अपना वाजिब हक पायेगा। हालांकि अधिकृत परिभाषा के अनुसार 18 साल से कम उम्र के सारे व्यक्ति बच्चों की श्रेणी में आते हैं। फिर भी 85–90 प्रतिशत दर्ज मौतें छह वर्ष से कम उम्र में ही होती हैं। इस चिंतनीय स्थिति के सबसे बड़े कारण हैं– पोषण की

विकलांगता

विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से मांसपेशियों में कई तरह की विकलांगता आती हैं, साथ ही सीखने, समझने की प्रक्रिया भी बाधित होती है, यानी डिस्लेक्सिया और डिस्कैल्कूलिया आदि। कैल्शियम की कमी से हड्डियाँ कमजोर होती हैं, वहीं विटामिन ए की कमी नजर कमजोर कर देती है। इसी तरह अन्य पोषक तत्वों की कमी से कई तरह की बीमारियां या कमजोरियां आती हैं।

कई योजनायें चलने के बावजूद संकट क्यों बरकरार है?

गरीबों के लिए 1970 से शुरू हुए प्रमुख खाद्य कार्यक्रमों के बावजूद अब तक पोषण के क्षेत्र में बदलाव नहीं आ सका है। डॉ. गोपालन का यह कथन कि, `अगर आप कैलोरी के अभाव को दूर कर देंगे तो प्रोटीन की कमी अपने आप गायब हो जाएगी` आज भी सार्थक है।

`लेकिन' बच्चों और वयस्कों के बीच मौजूद कैलोरी के अभाव को अनाज से दूर करने के लिए काफी कम गुंजाइश है। हमारे अधिकांश खाद्य कार्यक्रमों में सारा जोर चावल और गेहूं बांटने पर है। कैलोरी वसा, तेल, कंद, सब्जियों, तिल, दूध, अंडे, फल मसलन केले आदि स्रोतों से मिलना चाहिए। इससे कैलारी के अलावा प्रोटीन व अन्य पोषक तत्वों की कमी दूर की जा सकती है। भोजन में ऊर्जा घनत्व की जानकारी से यह अनिवार्य हो जाता है कि 6 माह से 3 वर्ष तक के बच्चों को मिलने वाली कैलोरी का 40 प्रतिशत हिस्सा वसा से आना चाहिए।

`यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कैलोरी के इस अभाव को दूर करने से पहले देश की 70 फीसदी आबादी के सूक्ष्म पोषक तत्वों की भरपाई के लिए खाद्य पूरक तत्वों के तौर पर रसायनों का इस्तेमाल किया जाने लगा है। पेंबा (मोजांबिक), तंजानिया तथा नेपाल जैसे देशों में, जहां मलेरिया का प्रभाव काफी ज्यादा है, एक से 35 माह की उम्र के बच्चों को दिए जाने वाले आयरन व फोलिक एसिड जैसे पूरक तत्वों के परिणाम गंभीर बीमारी व मौत के खतरे के तौर पर नजर आने लगे हैं। इसके चलते किसी भी तरह के फौरी फायदे बेमानी हो गए हैं। एक पृथक पोषण कार्यक्रम कभी भी ऐसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी) का विकल्प नहीं हो सकता, जहां बीमारी की पहचान व उपचार की सुविधाएं होती हैं।

संदर्भ - वीना शत्रुघ्न

वैश्विक पूंजी और भूख

अब वह दौर है, जब वैश्विक पूंजी विकास की परिभाषा तय करती है। इस परिभाषा में समानता, शोषण से मुक्ति और संसाधनों पर लोगों के अधिकारों के समान वितरण का सूचक के रूप में कोई स्थान नहीं होता। यह वैश्विक पूंजी भी 90 फीसदी लोगों को इस तरीके या उस तरीके से भूखा रखती है, ताकि वे खड़े न हो सकें, हर रोज रोटी के संकट में उलझे रहें।

कमी, स्वास्थ्य सेवाओं की अ–सुलभता, सामाजिक भेदभाव के चलते पनपने वाले रोग आदि। एक बच्चे के जीवन की यही बुनियादी चुनौतियां हैं और इसके लिए वह समाज व राज्य पर आश्रित रहता है। हम सब उसकी जिंदगी व मौत के ज़िम्मेदार हैं। हमारी सरकारें बच्चों के अधिकारों की पूर्ति व उनके संरक्षण हेतु संवैधानिक रूप से बाध्य व ज़िम्मेदार हैं।

7. दोनों आंखें बच्चों की वृद्धि पर रखिये!

जन्म के समय कम वज़न ही आगे चलकर, मानसिक व शारीरिक, दोनों दृष्टि से गठन की आजीवन बदहाल स्थिति का बुनियादी कारण बनता है। गर्भावस्था में उचित भोजन व पोषण की कमी, बहिष्कार, सामाजिक भेदभाव, प्रत्यक्ष व परोक्ष घरेलू हिंसा– ये सभी कारक बच्चों व उनकी माताओं को स्थायी क्षति पहुंचाते हैं। महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा के कारण बच्चों में तंत्रिका–तंत्र सम्बंधी रोग देखे गये हैं। राष्ट्रीय पोषण संस्थान की एक रिपोर्ट के अनुसार जन्म के समय कम वज़न वाले ज़्यादातर बच्चे गरीब परिवारों से आते हैं। कोई एक–तिहाई बच्चे जन्म के समय कम वज़न से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के चलते असमय मौत का शिकार बनते हैं। टी.बी. जैसे संक्रामक रोगों का बढ़ता प्रभाव ठीक इसी कारण दिखायी पड़ता है और अब यह एक सुस्थापित तथ्य है।

कुपोषण के कारण जीवन के प्रारम्भिक दिनों में ही अपंगता के ज़रिये दुर्दशा का दुष्चक्र शुरू हो जाता है। वर्तमान में हमारा सारा फोकस अपंग बच्चों के बेहतर पुनर्वास व उनके अधिकारों की सुरक्षा पर है। लेकिन, हम अगर शुरुआत में ही अपंगता के इस दुष्चक्र को तोड़ना चाहते हैं तो फिर हमें परिवार में महिलाओं के लिए पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी तथा इसके बाद बच्चों की विशिष्ट ज़रूरतों के मद्देनज़र उनके लिए पोषण सुरक्षा का एक वातावरण बनाना होगा।

8. कुपोषण–जन्य अपंगता

अगला सवाल यह उठता है कि क्या हमारे सभी बच्चों को एक सम्मानजनक जीवन मिलेगा या फिर वे विभिन्न प्रकार की अपंगताओं से भरा जीवन बिताने को मजबूर होंगे। अपंगताओं की मुश्किलों से जूझने में हम कुपोषण से उसके रिश्ते को ही भूल जाते हैं। बच्चे के शरीर में सूक्ष्म–पोषक तत्वों की कमी मांसपेशी की दुर्बलता व सीखने–समझने की क्षमता (डिसलेक्सिया, डिसकॅल्कूलिया वग़ैरह) जैसे

जनसंघर्ष की राजनीतिक से बाहर

अब जीवन के अधिकार के संघर्ष में श्रमिकों, किसानों, आदिवासियों, दलितों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं और कर्मचारियों की आवाज ने तो राजनीतिक रूप ले लिया है, लेकिन बच्चे!! वे तो पीछे ही छूट गए। इन समूहों के लोग भूल जाते हैं कि बचपन की भुखमरी आपकी सारी आवाजों को कुंद कर देगी। यदि आप कुपोषण पर मौन हैं तो आप वर्तमान और भविष्य दोनों को एक साथ बेरंग करने का अपराध कर रहे हैं।

विकार पैदा करती हैं। कैल्शियम की कमी से हड्डियां कमज़ोर होती हैं। विटामिन ए की कमी के चलते दृष्टि–सम्बंधी विकार पैदा होते हैं। **(संदर्भः लांसेट शोध श्रृंखला)**

''...जन्म के बाद बच्चे के मंदबुद्धि या मानसिक रूप से कमजोर होने का कारण गर्भाशय के भीतर पल रहे भ्रूण पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव है, जो गर्भवती महिला के अल्प पोषण के कारण भी हो सकता है। गर्भावस्था के दौरान शिशु के दिमागी विकास में बदलाव आ जाने से कुछ ऐसे दोष आ जाते हैं, जिनके लक्षण बाद में वयस्कता की उम्र में ही उभरते हैं। शिज़ोफ्रेनिया (खण्डित मनस्कता) से पीड़ित कुछ वयस्कों के मस्तिष्क में कुछ ऐसे उल्लेखनीय बदलाव देखे गये हैं, जिनके आधार पर तंत्रिका–विकास की परिकल्पना की पुष्टि होती है। जन्म–पूर्व अल्प–पोषण के कारण पैदा हुए निद्रा सम्बंधी कुछ विकारों के तार इसी बीमारी से जुड़ते हैं ....''(संदर्भ –द लांसेटः मातृ व बाल अल्प–पोषण 2–वयस्क सेहत व मानव पूंजी के बरक्स कुछ परिणाम)।

कुपोषण का कुप्रभाव न सिर्फ शारीरिक स्तर पर पड़ता है, बल्कि इससे उस व्यक्ति की सामाजिक हैसियत भी प्रभावित होती है। भारत में 26 फीसदी बच्चों का जन्म के समय वज़न 2.5 कि.ग्रा. से भी कम रहता है। इसके साथ ही पोषण का अभाव (जिसमें स्तनपान न कराना भी शामिल है) उनकी मानसिक क्षमता पर भी नकारात्मक असर डालता है। ऐसे में, चीज़ों को समझने की और कुछ नया सीखने की उनकी योग्यता बचपन में ही बाधित हो जाती है। ऐसी स्थिति में, शिक्षा और शिक्षित होकर विकासशील होने का मुद्दा उनके लिये बेमानी हो जाता है, क्योंकि शुरू से ही उन्हें ठीक से पोषण नहीं मिल पाया।

बच्चों के पोषण–अधिकार व उनकी आहार–सुरक्षा की अवहेलना का अर्थ है, ज़िन्दगी भर के लिए बच्चे के भीतर अपंगता का बीज बो देना। विकास सम्बंधी उसके अधिकार का हनन और उसे एक ऐसा जीवन जीने के लिए मजबूर करना, जिसमें कोई सपना न हो, जो बस मज़दूरी की मजबूरी बन जाए। कुपोषण के शिकार बच्चो का पढ़ाई में मन नहीं लगता, उनकी विश्लेषण क्षमता कम हो जाती है। नतीजतन, स्कूल प्रणाली में उनकी भर्ती दो से तीन साल देर से होती है। कमज़ोर मानसिक व शारीरिक क्षमता के कारण वे क्लास में फिसड्डी रह जाते हैं। इसके बाद स्कूल से बाहर निकल कर भी वे प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में लगातार पीछे रहकर सामाजिक बहिष्कार का शिकार बन जाते हैं। इस तरह वे पिछड़े कहलाने लगते हैं। भूख व भुखमरी की पीड़ा चूंकि दलित, आदिवासी समुदाय तथा शहरी ग़रीब

कुपोषण से जाति व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था में जातियों के आधार पर दलितों को न तो आजीविका का अधिकार मिलता है और न ही सम्मान और शोषण से मुक्ति का। वे एक तरह से दास या गुलाम बनाकर रखे गए। ऊंची जातियां उनकी मालिक बनी रहीं। उनसे खूब श्रम करवाया गया पर उन्हें कभी भरपेट भोजन नहीं मिल सका। उन्हें भूखे रखा गया ताकि भूख का जाल दलितों को स्वतंत्र न होने दे।

इन पर नजरअंदाजी क्यों?

आबादी में कैलोरी और प्रोटीन संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए अनाज और दालों को सब्सिडी देने के प्रयास किए जाने चाहिए (जैसा तमिलनाडु में हो रहा है)। साथ ही लोगों को अपनी आय से पोषक तत्वों से भरपूर भोजन मसलन, अंडे, सब्जियां, दूध, मांस, फल आदि खरीदने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। देश के समस्त पोषाहार कार्यक्रमों में मांसाहार को शामिल किया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी का संबंध महज कैलोरी संबंधी जरूरतें पूर्ण करने की बजाय वृहद व सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर भोजन से जुड़ा होना चाहिए।

अधिक भुगतते हैं, सो वे निरक्षरता व कुपोषण के दुष्चक्र में फंसकर लगातार पिसते ही रहते हैं। तमाम अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि वंचित तबकों के बच्चों के मामले में जाति–आधारित व लिंग–आधारित पूर्वाग्रह सबसे बड़ी बाधाएं बनती हैं।

क्या रासायनिक पोषक तत्व ही सही हल हैं!

- नेपाल में बच्चों की पहुंच बेहतर सुविधाओं वाले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तक होने से आयरन व फोलिक एसिड से होने वाले फायदे व नुकसान के अंतर को संभाल लिया जाता है। एनीमिया के ज्यादा प्रभावी होने, मलेरिया संक्रमण कम होने तथा प्रभावी प्राथमिक देखभाल तंत्र से स्वास्थ्य के फायदे बढ़ाए जा सकते हैं।
- इंडोनेशिया, जहां बच्चों को विटामिन ए के पूरक तत्व दिए जाते हैं, के अध्ययन बताते हैं कि ऐसे बच्चे जिन्हें श्वसन संबंधी बीमारी हो या जो विटामिन ए की ज्यादा मात्रा ले लेते हैं उनकी बढ़ोतरी पर नकारात्मक असर पड़ता है।
- भारत में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि 1-5 वर्ष के बच्चों को विटामिन ए की खुराक गर्मियों में ही देने से फायदा होता है।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों से पूर्ण भोजन बुखार व खूनी दस्त से पीड़ित बच्चों को ऐसा आहार देने पर 8 माह की अवधि में इनके वजन में ढाई सौ ग्राम की बढ़ोतरी देखी गई।
- राष्ट्रीय पोषण संस्थान के अध्ययन के मुताबिक गरीबी की पृष्ठभूमि से आए बच्चों को छह माह कैल्शियम दिए जाने के बावजूद उनके ऊंचाई पर सकारात्मक प्रभाव देखने को नहीं मिला।
- उपचारात्मक आयरन की गोलियां लेने से तनाव बढ़ने की आशंका होती है, इसका असर लीवर के एंजाइम पर भी पड़ सकता है। सूक्ष्म पोषक तत्व देने का कार्यक्रम पर्याप्त खाद्यान्न के अभाव में राष्ट्रीय योजना का स्वरूप नहीं ले पाया।

संदर्भ - वीना शत्रुघ्न

इंसान की खाद्य–सुरक्षा का चक्र गर्भ में भ्रूण के जन्म लेते ही शुरू हो जाता है। साफ है कि अजन्मे बच्चे की आहार–सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पहले तो गर्भवती माता की खाद्य सुरक्षा यथासमय सुनिश्चित की जानी चाहिये। गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओं की खाद्य सुरक्षा के ज़रिये ही बच्चे की पहली सांस से लेकर उसकी आखिरी सांस तक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। इसके लिए हमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि स्तनपान और पोषण से परिपूर्ण आहार को सामाजिक व्यवस्था का एक अभिन्न अंग बनाकर ही हम अपने लाखों शिशुओं का जीवन बचा सकते हैं।

9. कुपोषण उन्हें बहिष्कार की गर्त में धकेलता है

बचपन की भूख बच्चों के शारीरिक विकास को इस हद तक प्रभावित करती है कि पहले तो वे अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों में पिछड़ते हैं, फिर वे रोजाने के खेलकूद में फिसड्डी बन जाते हैं। इसके बाद वे आगे चलकर एक हारा हुआ जीवन जीने पर मजबूर हो जाते हैं। हमारे देश में मज़दूरी की वर्तमान दरें इस आधार पर तय की जाती हैं कि एक स्वस्थ व्यक्ति दिन के सात घंटे में कितना क्या काम कर पायेगा। लेकिन देश के आधे बच्चे तो कुपोषण के कारण अपनी काम करने की क्षमता गंवा चुके होते हैं। वयस्क होने पर भी उनकी क्षमता औरों से कम ही होती है। इसे देखकर अक्सर कहा जाता है कि आदिवासी लोग तो होते ही धीमे व सुस्त हैं। नतीजतन, आधा अधूरा काम करने पर उन्हें मज़दूरी भी कम मिलती है।

विभिन्न सामाजिक–राजनैतिक व आर्थिक कारणों से दलित व आदिवासी तबकों में तो स्थिति बहुत बदतर है। समाज के शक्तिशाली, समर्थ वर्गों के मुकाबले आदिवासी समुदायों में कुपोषण का स्तर 16–22 प्रतिशत तक अधिक पाया गया है। यह तथ्य बार–बार स्थापित हुआ है कि प्राकृतिक संसाधनों पर उनका नियंत्रण छिन जाने व नयी विकास नीतियों के चलते आदिवासी समाज को सबसे अधिक नुकसान पहुंचा है। एक समय खाद्य सुरक्षा के मामले में सबसे सुरक्षित तबका कहा जाने वाला आदिवासी समुदाय अब भूखे पेट सोने पर मजबूर हैं। इससे यह तो साफ है कि आदिवासी बच्चों को पोषण असुरक्षा के जंजाल और भूख–वंचना–बहिष्कार के दुष्चक्र से बाहर निकालना होगा। आज, जंगलों पर आदिवासी समुदायों के वास्तविक व आदिम अधिकारों को बहाल करना ही होगा। साथ ही ऐसी नीतियों को रद्द करना होगा, जिनके चलते आदिवासी समुदायों व अन्य जंगल–वासियों को अपनी

सामाजिक बसाहटों से बाहर निकलने पर मजबूर होना पड़ रहा है। यही नहीं, प्राकृतिक संसाधनों को तहस–नहस करने वाले तथाकथित विकास को हर हाल में रोकना रोकना होगा, ताकि इन उजड़े हुए लोगों के पोषण अधिकार बहाल किए जा सकें।

वर्तमान में हम अपने ही संसाधनों पर अपना अधिकार वापस पाने के लिए सरकार के साथ तमाम नव–उदारवादी, पूंजीवादी ताकतों से भी जूझ रहे हैं। सवाल यह है कि भूख से पीड़ित हमारे बच्चे क्या इस लड़ाई को आगे जारी रख पाएंगे? यदि वे ऐसा नहीं पाते तब क्या वे खुद को बचा पाएंगे? इस बात की गहरी आशंका व्याप्त है कि इन बच्चों को जान–बूझकर लगातार भूखा व कुपोषित रखा जा रहा है, ताकि विषमता व अन्याय के खिलाफ लड़ने की उनमें ज़रा भी शक्ति न रहे।

खाद्य–सुरक्षा का मुद्दा महत्वपूर्ण है। जैविक चक्र का यह एक अभिन्न हिस्सा है। महिलाओं के अस्तित्व पर भी इसका गहरा असर पड़ता है। हमें हर हाल में यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारी माताएं अपनी संतानों को उनके जीवन का पहला पाठ यह पढ़ाने के लिए न मजबूर हों कि हर हाल में भूख के साथ कैसे जीया जाता है। बच्चों के बीच भुखमरी एक ऐसे वर्ग का निर्माण करती है, जिसे कमज़ोर व अनुत्पादक बताकर सामान्य व्यवस्था से बाहर कर दिया जाता है। दूसरी ओर महिलाओं के पोषण संबंधी जरूरतों को भी नकारा जाता है। समाज यह मान लेता है कि महिलाएं आधा–अधूरा भोजन खाकर भी गुज़ारा कर सकती हैं। समाज की यह विकृत लिंगभेदी सोच उन्हें आधे पेट रहने को मजबूर करती है। लगातार भूख का यह जाल हमारे वंचित व कुपोषित बच्चों को आज की प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया से बाहर ही रखेगा और वे अपनी प्रगति के पथ पर कभी नहीं चल पाएंगे। प्राकृतिक संसाधनों का विनाश करने वाले आज के इस तथाकथित विकास को रोकना ही होगा, ताकि इन वंचित, कुपोषित बालकों का पोषण हो सके।

10. शिक्षा–संचार–ग़रीबी व अशक्तिकरण

जब कभी वंचित तबकों के बीच शिक्षा के निम्न स्तर के कारणों व प्रभावों की बात चलती है तो यह फरमान जारी कर दिया जाता है कि अरे ये पिछड़े लोग तो पढ़ना ही नहीं चाहते। इनके पास तालीम पाने की ज़रा भी रुचि नहीं। दरअसल ऐसे बच्चों की सीखने की क्षमता अधिकांशतः उनके पोषण की खराब गुणवत्ता के कारण प्रभावित होती है। नतीजतन, ये कुपोषित बच्चे विकास की मुख्यधारा से

छिटक जाते हैं और व्यवस्था से बाहर चले जाने के बाद फिर, आगे चलकर इन्हें सीखने के और अवसर जीवन में नहीं मिल पाते। उनकी यह दुखद स्थिति तब और भी बदतर हो जाती है, जब उन्हें अपनी स्थानीय भाषा में नहीं पढ़ाया जाता। उदाहरण के लिए मध्यप्रदेश में बच्चों को हिंदी में ही पढ़ाया जाता है। लेकिन कोरकू, बैगा, गोंड या भील जनजाति के बच्चों की मातृभाषा हिन्दी नहीं होती। इसके कारण वे पढ़ाई में पिछड़कर बहिष्कार के कुचक्र में फंस जाते हैं। ऐसे में वे लगातार खाद्य व आजीविका की असुरक्षा का दंश झेलते रहते हैं। यह असुरक्षा उन्हें बहिष्कार—ग़रीबी—कुपोषण—बहिष्कार—अत्यधिक ग़रीबी की गर्त में और भी गहरे धकेलती है।

जहां तक सरकार की प्रतिबद्धता की बात है तो छह साल से कम आयु समूह के बच्चों की कुल 16 प्रतिशत आबादी के लिए केवल एक ही योजना— आई.सी.डी.एस.— अमल में है। इस पर भी सरकारी बजट का केवल एक प्रतिशत ही खर्च होता है। सरकार का ज़्यादातर ध्यान उस नीति पर रहता है, जिसके चलते कुपोषण—जनित बीमारियों से ग्रस्त बच्चों का उपचार किया जाता है। यानी कि यह सोच सिरे से नदारद है कि बच्चे कुपोषण—जनित इस कुचक्र में फंसें ही नहीं।

11. विकास के पथ से विपथ

सामाजिक संगठन होने के नाते हम लगातार इस बात की पैरवी करते रहे हैं कि बाल खाद्य असुरक्षा के विभिन्न मुद्दों पर प्रशासकीय ढांचे के भीतर ही एक केंद्रीकृत, पारस्परिक तालमेल के साथ तथा व्यापक दृष्टि वाले ऐसे कदम उठाए जाने चाहिये, जो इन वंचित बच्चों को सम्मानजनक जीवन जीने के अवसर प्रदान कर सकें। हमारे देश की कुल विस्थापित जनसंख्या (आज़ादी के बाद से विकास के नाम पर हमारे देश में कोई छह करोड़ से भी अधिक जनता अपनी जड़ों से उखड़ी है) में 44 प्रतिशत तो 18 वर्ष से कम आयु समूह में आते हैं, जबकि इसका 16 प्रतिशत हिस्सा छह वर्ष से कम आयु वाले बच्चे हैं। इसका मतलब यह हुआ कि इनमें से एक करोड़ लोग छह वर्ष से कम की उम्र वाले बच्चे हैं, जबकि इनमें से ढाई करोड़ व्यक्ति 18 साल से कम उम्र वाले हैं। विकास के नाम पर विस्थापन न सिर्फ उन्हें अपनी सांस्कृतिक पहचान से वंचित कर रहा है, बल्कि यह उन्हें प्राकृतिक संसाधन आधारित अपनी आजीविका से भी उखाड़ फेंक रहा है। नतीजतन, ये उजड़े लोग इस स्थिति में नहीं रह गये हैं कि वे अब अपने जंगलों, अपनी पहाड़ियों, अपनी घाटियों, अपनी जड़ी—बूटियों व अपने औषधीय पौधों या

गरीबी के मुद्दे पर बहस

- वर्ष 1992 में लक्षित समूहों की प्रक्रिया को अपनाना (ताकि सब्सिडी पर होने वाले खर्च को घटाया जा सके)
- इसे 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के साथ लागू करना।
- बाद में स्वास्थ्य, शिक्षा के साथ भी यही प्रक्रिया दोहराना।
- भारत में राज्य निरंतर विकास के साथ गरीबी की रेखा में गिरावट दिखाते आ रहे हैं। यह 1997 में 37 प्रतिशत थी जो 2004-05 में 28 प्रतिशत तक पहुंच गई।
- लेकिन बाद में नागरिक समूहों की ओर से इसे चुनौती दी गई और इन आंकड़ों को गलत साबित कर दिया गया।
- अब भी गरीबी की परिभाषा लोगों की पोषण की सुरक्षा को तवज्जो नहीं देती है।

कुल घरेलू उत्पाद बनाम कुपोषण

- यह बात बिल्कुल साफ है कि वृद्धि आधारित विकास के सिद्धांत से भारत में कुपोषण में किसी तरह की गिरावट में कोई भी योगदान नजर नहीं आ रहा है।
- कुल घरेलू उत्पाद की दर वर्ष 2001-2009-5 प्रतिशत से 8.5 प्रतिशत।
- कुपोषण में गिरावट 0.1 प्रतिशत प्रति वर्ष या 10 वर्षों में एक प्रतिशत।
- गरीबी में गिरावट उल्टे 36 प्रतिशत से बढ़कर 37 प्रतिशत तक पहुंच गई।

पर्यावरण के बारे में जान पाएं और अपने इस पारम्परिक ज्ञान को सहेज कर रख पाएं। ऐसे में अगर उनका यह ज्ञान–भंडार ही जाता रहा तो फिर उनकी अपनी अस्मिता कहां भला बच पायेगी! विस्थापित परिवारों के बच्चों में कुपोषण व बाल मृत्यु दर अधिक पाया जाता है। इससे वे पढ़ाई के प्रति अपना उत्साह खो देते हैं, उनका आत्म–विश्वास मर जाता है और एकाग्र होने की उनकी क्षमता खत्म हो जाती है। ऐसे बच्चों की कुछ खास ज़रूरतें होती हैं, जिन्हें हर हाल में पूरा किया जाना चाहिये। लेकिन अभी तक इन पर न कोई विचार–विमर्श हुआ और न ही विस्थापित आदिवासी समुदाय को इसमें सहभागिता निभाने के अवसर दिये गये।

12. शहरीकरण भी आग में घी का काम करता है

शहरीकरण को विकास के एक पाये के बतौर देखा जाता है। लेकिन हमारे बड़े शहरों की 40 प्रतिशत से भी अधिक आबादी या तो झुग्गियों में रहती है या फिर जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीनीकरण मिशन द्वारा बनाये गये एक कमरे के डिब्बों में गुजारा करती है। अवैध होने के कारण शहरी झोपड़पट्टी इलाकों में से आधे में कोई मूलभूत सुविधाएं नहीं होतीं। न कोई आंगनवाड़ी और न ही साफ पेयजल व स्वच्छता का कोई प्रावधान। इनमें रहने वाले आधे से अधिक बच्चे कुपोषित व बीमार होते हैं। अपना और परिवार का पेट पालने लिए इन बच्चों के पास प्लास्टिक की थैलियां बीनने, निर्माण कार्यों या ढाबों, छोटे–मोटे होटलों, घरों में काम करने के अलावा कोई चारा नहीं होता। आप इन्हें जहां–तहां खुले मैदानों में, या सड़कों पर मध्यमवर्ग द्वारा फेंके गये टुकड़े बीनते देखेंगे। इन्हें पैदाइशी अपराधी मान लिया जाता है, क्योंकि वे गांव से चले आये हैं, झोपड़ियों में पैदा हुए हैं और मैले–कुचैले कपड़े पहने होते हैं।

13. बाज़ार की चुनौतियां

भूख व कुपोषण के बीच एक तरफ जहां बच्चों के जीवन पर खतरा मंडरा रहा है, वहीं दूसरी ओर मुनाफे पर नजर गड़ाए बाज़ार की ताकतें इस हालात को भी अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करना चाहती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा लगातार यह कुप्रचार किया जा रहा है कि उनकी फैक्टरियों में बनकर खुले बाजार में बिक रहा आहार स्थानीय स्तर पर बनाये गये खाद्य पदार्थों से कहीं अधिक पौष्टिक होता है।

जबकि यह एक जाना–माना तथ्य है कि घर में बने खाद्य पदार्थ ही सर्वश्रेष्ठ व पोषण के टिकाऊ समाधान होते हैं, क्योंकि इसमें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध व उत्पादित पदार्थ ही इस्तेमाल किये जाते हैं। इनमें स्थानीय रूप से स्वीकार्य खाद्य–संस्ति को अपनी अभिव्यक्ति का मौका मिलता है। दरअसल ये बड़ी कम्पनियां प्राकृतिक व सामुदायिक संसाधनों पर कब्ज़ा जमाना चाहती हैं, ताकि समाज की ज़रूरतों का निजी लाभ के लिए दोहन किया जा सके। सरकारें भी बाजार के इस दिखावे में आकर आंगनवाड़ियों में फैक्ट्री निर्मित इन आहारों का वितरण कर रही हैं। इन्हें आंगनवाड़ियों में आने वाली महिलाओं व उनके बच्चों को खिलाया जा रहा है। इसी बहाने सरकार जनता के धन से मोटी कमाई कर रही है। कुल मिलाकर आम जनता द्वारा टैक्स व शुल्क आदि के रूप में दिया गया पैसा बेईमान बाजारवादी ताकतों की पेटियों में चला जा रहा है।

14. नो–टार्गेट तरीका ही काम आयेगा

दुनिया के दो सबसे बड़े बाल–आहार सुरक्षा कार्यक्रम– आई.सी.डी.एस. व मध्यान्ह भोजन योजनाएं सिर्फ भारत में ही चलाए जा रहे हैं। पर जवाबदेहिता की कमी, भ्रष्टाचार, उपेक्षा, सामाजिक बहिष्कार तथा बाल–मुद्दों को कमतर मानने की प्रवृति के चलते बच्चों में खाद्य असुरक्षा और अधिक गहरी हो चली है। प्रति बालक चार रु. प्रतिदिन के हिसाब से सरकारी खर्च और इस पर गुणवत्ता तथा व्यापक दृष्टि का अभाव। इसके कारण यह तकरीबन सुनिश्चित हो चला है कि समेकित बाल विकास योजना जैसा व्यापक कार्यक्रम भी पिछले 35 साल से कुपोषण की चुनौती का सामना करने में असमर्थ है और आज भी वह उसी स्तर पर अटका है, जहां 10 साल पहले था।

पिछले 35 सालों से अनुशंसित दैनिक खुराक के उलट छह वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को औसतन प्रति दिन 500 से 1000 कैलोरी कम आहार मिल रहा है। इसका मतलब यह कि वे हर क्षण भूखे ही जी रहे हैं। लेकिन ऐसे में भी, राष्ट्रीय एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम (आई.सी.डी.एस) केवल 300 कैलोरी प्रति दिन सम्पूरक पोषण का प्रावधान करता है और वह भी साल में केवल 300 दिनों के लिए। हमने कभी भी उन मापदण्डों व मानकों को प्रश्नांकित नहीं किया, जिनके आधार पर ये प्रावधान बनाये गये थे। हमारे नीति निर्माता पोषण कार्यक्रम बनाने में इतना बड़ा घपला कैसे कर बैठे, जबकि उन्हें बच्चों की विशिष्ट व असल ज़रूरतों के हिसाब से यह कार्यक्रम तैयार करना था?

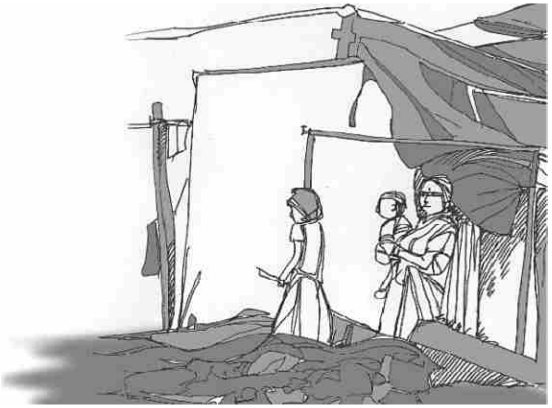

गरीबी के आंकड़ों के साथ छल

- बुनियादी तौर पर प्रति व्यक्ति किलो कैलोरी उपभोग का तरीका अपनाया जाता है तथा इसे उपभोक्ता व्यय के साथ जोड़ा जाता है।
- आईसीएमआर के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 किलो कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 2100 किलो कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन जरूरी है।
- लेकिन अब एफएओ द्वारा घटाए गए नए पैमानों पर भरोसा किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 1770 किलो कैलोरी तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 1999 किलो कैलोरी। किलो कैलोरी उपभोग के नए पैमानों की वजह से लाखों परिवार गरीबी की परिभाषा से दूर धकेल दिए गए।
- **तेंदुलकर कमेटी की अनुशंसाओं के आधार पर उपभोक्ता व्ययः** ग्रामीण क्षेत्रों में 446.68 रुपए (14.88 रुपए प्रति दिन) तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 578.8 रुपए (19.29 रुपए प्रति दिन)

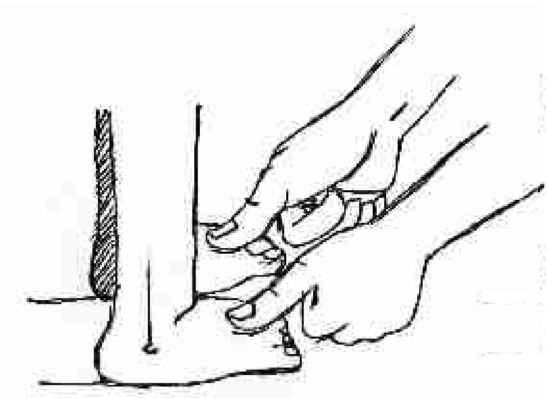

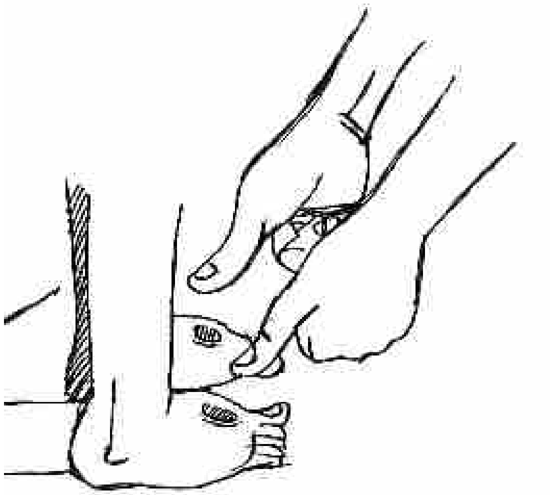

कुपोषण का उपचार सीमित पूरक पोषण के ज़रिये कभी नहीं हो सकता। यह परिदृश्य बदलने के लिए बुनियादी कारणों पर चोट करना ज़रूरी होगा। अगर हम आज एक व्यापक सोच के साथ कुपोषण से निपटना शुरू करें तो 35 साल बाद हम इसमें एक टिकाऊ बदलाव देख पायेंगे। यानी कि एक पूरी पीढ़ी को यह बदलाव देखने के लिए तरसना होगा।

लांसेट श्रृंखला कहती है : ''अल्प–पोषण का प्रभाव कम से कम तीन पीढ़ियों तक बना रहता है। जैसा कि पांच समूह की महिलाओं के बच्चों के जन्म के समय वज़न तथा उनकी दादी मां की ऊंचाई के बीच परस्पर संबंधों से पता चलता है। उनकी शारीरिक स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि अन्तःपीढ़ी प्रभाव केवल वर्तमान पीढ़ी पर काम करते हुए प्रगति की उपलब्धियों को बाधित नहीं करते।''

15. समुदाय में है समाधान

कुपोषण के शिकार हर बच्चे को अस्पताल में भर्ती करना या दवाईयाँ खिलाना जरूरी नहीं है। अब यह स्थापित सच्चाई है कि समुदाय के स्तर पर ही बच्चों की देखभाल और पोषण की व्यवस्था करके इस स्थिति को बदला जा सकता है। हम जानते हैं कि कुपोषण को अब तीन रुपों में देखा जाता है। अल्प, मध्यम और गंभीर कुपोषण। बच्चों में अल्प और मध्यम दर्जे के कुपोषण को घर पर ही बेहतर पोषण देकर और देखभाल करके पूरी तरह से मिटाया जा सकता है। जबकि गंभीर कुपोषण के शिकार बच्चों (जिनकी मृत्यु होने की संभावना बहुत ज्यादा होती है) पर गहरी नजर रखी जाना चाहिये। अब माना जाता है कि कुल गंभीर कुपोषित बच्चों में से 85 प्रतिशत बच्चों को भी पोषण पुनर्वास केन्द्र या अस्पताल ले जाने की जरूरत नहीं होती है। उनकी स्थिति समुदाय के स्तर पर ही बदली जा सकती है, क्योंकि उनमें बीमारी सम्बन्धी जटिलतायें नहीं होती हैं। गंभीर कुपोषित बच्चों में से लगभग 15 प्रतिशत बच्चे ऐसे होते है, जो संक्रमण, सूजन या बीमारी के शिकार होते हैं। ऐसे बच्चों के पैर के पंजे पर अपने अंगूठे से दबाव डालकर हम देख सकते हैं कि क्या वहां थोड़ी देर के लिए गड्ढा बना रहता है ? यदि हां तो उस गंभीर कुपोषित बच्चे को पोषण पुनर्वास केन्द्र या अस्पताल ले जाने की जरूरत होगी। इसी तरह यदि किसी बच्चे को संक्रमण, डायरिया या निमोनिया है तो भी उसे तत्काल स्वास्थ्य या पोषण केन्द्र में दाखिल करना चाहिये। अपनी नीतियां बनाते समय हमें इस बात की साफ जानकारी होनी चाहिये कि कौन से बच्चों को कब और कैसे संरक्षित किया जा सकता है। बहुत जरूरी है कि हर बच्चे की वृद्धि

और विकास की निगरानी होती रहे; इससे ही सही समय पर कुपोषण की पहचान की जा सकती है और कुपोषण का मुकाबला आसान हो जाता है।

संकट यह है कि ज्यादातर बच्चों का वजन ही आंगनवाड़ी में दर्ज नहीं होता है या गलत दर्ज होता है। उस स्थिति को बदलना होगा। समुदाय विशेषज्ञ यह भी मानते हैं कि समुदाय और परिवार के स्तर पर उपलब्ध खाद्यान्न सामग्री (जैसे मक्का, गुड़, मूंगफली, अण्डा, दूध, केला, दालें आदि) से ही ऐसा पोषण आहार बनाया जा सकता है जो न केवल बच्चों को कुपोषण के चक्र से बाहर ला सकता है, बल्कि इस चक्र में फिर से फंसने से भी बचा सकता है। बात इतनी सी है कि समुदाय स्तर पर तैयारी करके और अपने आस–पास उपलब्ध खाद्यान्न सामग्री से कुपोषण की जंग को लड़ा जा सकता है। हमें देखना होगा कि कुछ खास बच्चों को संरक्षण मिले।

15. स्त्री स्वास्थ्य से जुड़े सवाल

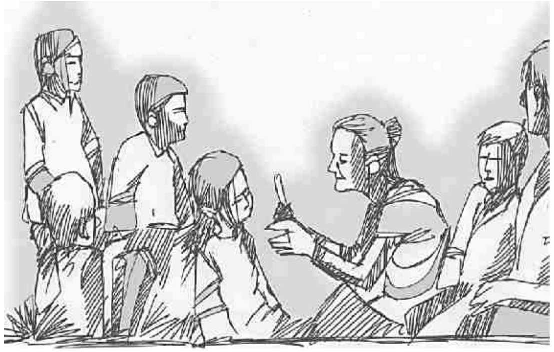

विख्यात फ्रेंच लेखिका व महिलावादी विचारक सिमोन द बोउवर लिखती हैं कि विवाह की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यह स्त्री को अपेक्षित सुख नहीं देता। सुख के विषय में विवाह किसी प्रकार का आश्वासन नहीं देता है। यह स्त्री को विकृत कर देता है। उसके जीवन में एक ही घटना दोहराई जाने लगती है। जीवन के प्रथम बीस वर्ष स्त्री के लिये विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। वह विश्व को देखती है और अपने भाग्य को जानती है। फिर वह इसी आयु में एक घर की मालकिन बन जाती है। किसी पुरूष के साथ उसका स्थाई सम्बन्ध बन जाता है। फिर उसकी गोद में एक शिशु खेलता है। इस मोड़ पर पहुंचकर उसका जीवन मानों शेषप्राय हो जाता है। उसके त्याग और श्रद्धा की सराहना होती है, किन्तु उसकी दृष्टि में दो व्यक्तियों की देखभाल और चिंता करना बड़ा निरर्थक सा होता है। अपनों को भूल जाना तो बड़ा अच्छा है पर प्रश्न है किसके लिये और क्यों?

औरत के जीवन का यह चित्र उस समुदाय या समाज में रंग नहीं भरता है, जिसमें उसे सबसे बाद में बचा–खुचा भोजन खाते हुये दिखाया जाता है। पोषण महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण है कि वह बासी भोजन को व्यर्थ फेंके जाने से बचायेगी। जिस सामाजिक और पारिवारिक पर्यावरण में वह रहती है, वही उसके दुखदायी भविष्य की रूपरेखा तैयार करता है। पोषण, सुरक्षा, मनोरंजन और स्वतंत्रता के अभाव में एक बीमार जीवन पनपने लगता है। यही जीवन वृद्धावस्था में हर तरह से असुरक्षित होता है। प्रजनन अपने

आप में प्रकृति की सबसे सार्थक और रचनात्मक विशेषता है और स्त्री उस विशेषता की वाहक है। लेकिन वास्तविकता यह है कि यही विशेषता उसके लिये सबसे ज्यादा पीड़ादायक क्षण पैदा करती है। शरीर का दर्द हो चाहे मन की पीड़ा या फिर समाज की शंकायें; सब कुछ प्रजनन से ही जुड़ा हुआ है।

देरी की कीमत एक जिंदगी

हर गर्भवती महिला का जीवन मातृत्व मृत्यु के साये में रहता है। जब हम इसके कारणों पर नजर डालते हैं तो पता चलता है कि तीन तरह की देरी एक औरत को मृत्यु की कगार तक पहुंचा देती है......

पहली देरी निर्णय लेने की – यह एक अहम् बात है कि गर्भवती महिला के आसपास समाज और परिवार का गहरा जाल बुना होता है। वह तरह–तरह के मूल्यों और अपेक्षाओं का दबाव झेलती है। ऐसी स्थिति में वह जब तक सहज होती है, तब तक अपनी पीड़ा को सहती है। परन्तु जब उसकी पीड़ा असहनीय हो जाती है तब भी उसे यह अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं है। कुछ भी हो निर्णय तो परिवार ही लेता है और परिवार के सामने सामाजिक व्यवहार हमेशा महत्वपूर्ण होते हैं। वे नहीं जानते हैं कि प्रसव पीड़ा की अवधि 12 घंटे से ज्यादा होने का मतलब है जीवन पर संकट। फिर गरीबी और सहयोग का अभाव भी यह निर्णय लेने में देरी करवाता है कि गर्भवती महिला को सुरक्षित प्रसव के लिये स्वास्थ्य केन्द्र तक पहुंचाया जाये।

दूसरी देरी स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंचने की – जब परिवार यह तय करता है कि महिला को स्वास्थ्य केन्द्र तक लेकर जाना ही है, तब उसके भाग्य में दूसरी देरी होती है। जब तैयारी हो रही होती है तो सामने खड़ा होता है परिवहन और सड़क का सवाल। मध्यप्रदेश के 55 से 70 फीसदी गांव अब भी सड़कों के सम्पर्क में नहीं हैं और स्वास्थ्य केन्द्र की औसतन दूरी 25 किलोमीटर हैं। ऊबड़–खाबड़ रास्तों से गुजरने के कारण गर्भवती महिलाओं की स्थिति दर्दनाक हो जाती है। गरीबी की स्थिति में उनके सामने परिवहन के साधनों की बड़ी समस्या रहती है।

तीसरी देरी गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधायें मिलने में – तमाम कठिनाईयों से जूझते हुये जब गर्भवती महिला अस्पताल पहुंच भी जाती है तो उसे वहां सबसे ज्यादा कड़वी सच्चाईयों का सामना

स्त्री को भूखा रखने की रणनीति

पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये सबसे बड़े हथियार के रूप में स्त्री को भूखा रखने की रणनीति को अपनाया गया है। समाज में उसे श्रम, उत्पादन और सामाजिक व्यवस्था में दोयम दर्जे का स्थान देकर यह महसूस कराया गया कि उसे भरपेट भोजन पाने का हक नहीं है। उसे केवल मौजूदा लैंगिक भेदभाव आधारित व्यवस्था की सेवा करने की जिम्मेदारी सौपी गई है। इसलिये उसे भोजन सबसे कम, आखिर में और कभी-कभी बिल्कुल नहीं करने का हक है।

करना पड़ता है। दुर्व्यवहार, असंवेदनशीलता, भ्रष्टाचार, डॉक्टर और दवायें भी मौजूद न होना और अस्वच्छता तो मानो सरकारी अस्पतालों की पहचान बन गई है। यहां पर कुछ और न सही पर अच्छे व्यवहार की तो अपेक्षा रहती ही है।

निशान खतरे के

- यदि गर्भावस्था के दौरान वजन न बढ़ा हो। कम से कम 6 किलो वजन बढ़ना चाहिये।
- यदि खून की कमी है या आंखों में पीलापन है।
- यदि पैर, बांह या चेहरे पर सूजन है।
- यदि भ्रूण का हिलना–डुलना महसूस न हो रहा हो।
- प्रसव पूर्व देखभाल न मिलना।

तत्काल कार्रवाई की स्थिति

- यदि गर्भावस्था के दौरान या प्रसव के बाद लगातार योनि मार्ग से रक्त स्राव हो रहा हो।
- सिर या पेट में तेज दर्द हो रहा हो।
- उच्च या निम्न रक्तचाप हो।
- लगातार उल्टियां हो रही हों।
- तेज बुखार हो।
- यदि प्रसव से पहले पानी का स्राव हो।
- यदि प्रसव पीड़ा 12 घंटे या उससे ज्यादा हो।

नज़रिया बदलिये!

पोषण और भोजन के मामले में महिलाओं के साथ जो भेदभाव होता है वो उन्हें तन और मन के साथ-साथ राजनैतिक और सामाजिक रूप से भी कमजोर करता है। इस परिस्थिति में जबकि वे ताउम्र पोषण की असुरक्षा का जीवन जीती हैं वहां सरकारें भोजन का पूरा हक देने के बजाय उसे प्रसव के वक्त तीन दिन अस्पताल की सुविधा देकर उसकी जिंदगी बचाने की नीति बनाती हैं। इस नीति से उसका पूरा जीवन बचना सम्भव नहीं। जरूरत इस बात की है कि उसे समाज में समान स्थान मिले और पोषण का अधिकार उसका मौलिक अधिकार हो।

कुपोषण को मापने में उम्र के मान से वजन और लम्बाई को अहम सूचक के रूप में अपनाया जाता है।

माना जाता है कि एक निश्चित उम्र में बच्चे का एक निश्चित वजन और एक निश्चित लम्बाई होना चाहिए।

इसी से उसके ठिगने होने, दुबले होने और कुपोषित होने की पहचान होती है।

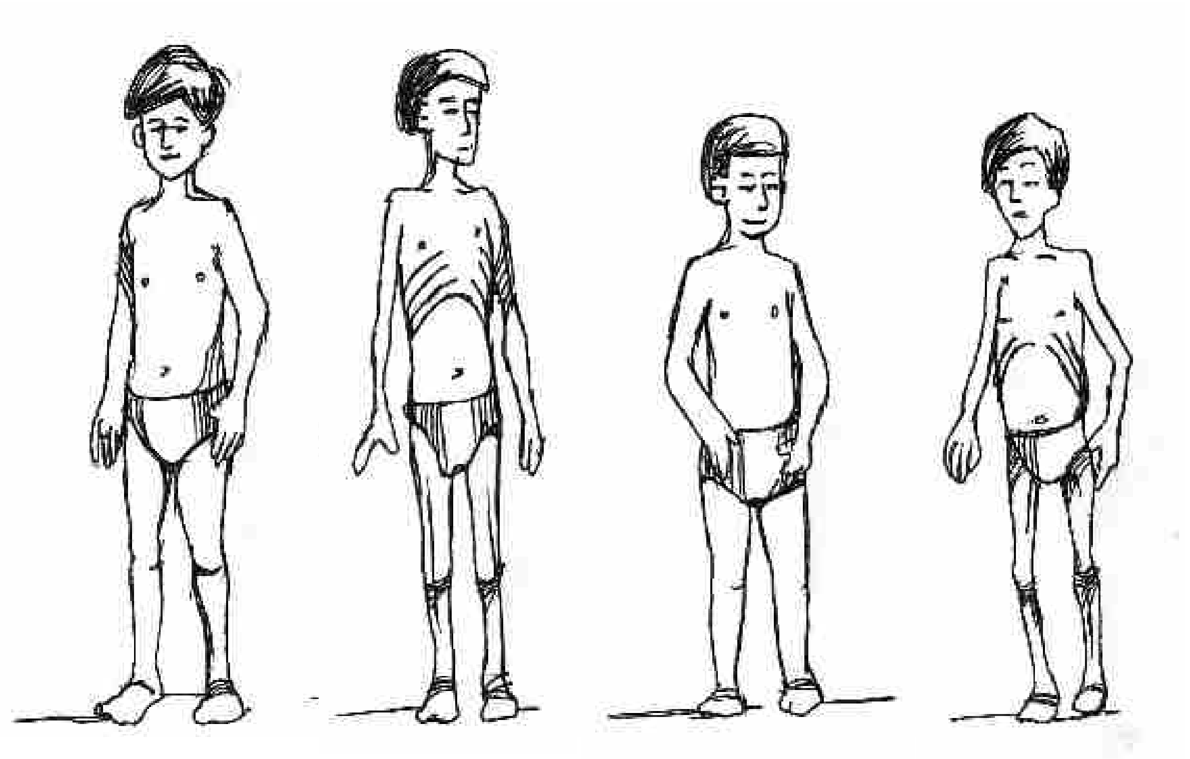

सामान्य | सामान्य से दुबला | सामान्य से ठिगना | सामान्य से दुबला और ठिगना

16. कुछ निष्कर्ष

आज बहुत तेज़ी से समावेशीकरण यानी इन्क्लुजन की बात हो रही है। मानो इसी में जादू की कोई छड़ी छिपी हुई है। इस सोच और रणनीति में भी किसी का समावेश किया जाएगा, यानी उसकी एक बहिष्कृत की पहचान उभरेगी या बनी रहेगी। समावेश करने का काम कोई और करेगा, यानी अब वही ताकतवर, जो बाहर धकेलता रहा, समावेशीकरण का इंचार्ज बन गया है – स्वयं भू!! आज के समावेशीकरण में जो छिपाया जाता है वह है बीमारी या बहिष्कार के मूल कारण और जो उभरा जाता है वह है इलाज! यानी नीति बनाने वालों और विद्वानों का तरीका है समस्या के कारणों को छिपा कर उसका इलाज करना! बच्चे इस समाज का स्वाभाविक हिस्सा हैं। संकट यह है कि अब थोड़ा–थोड़ा उन्हें सुनना तो शुरू किया है, पर इस मान्यता को और पुख्ता कर लिया है कि बच्चों में समझ नहीं होती। इसलिए हम सुनते हैं, और उनकी बात सुनकर उन्हें ही अपनी यानी वयस्कों की सोच से सहमत कराने की कोशिश में जुट जाते हैं। अपनी बात मनवाने के लिए समाज उन पर दबाव डालता है (शिक्षा के ढांचे के जरिये), षड़यंत्र रचता है (साम्प्रदायिकता का व्यवहार करना), और हिंसात्मक व्यवहार करता है (लिंगभेद ओर जातिभेद सिखाना)।

देखा जाये तो बच्चे आज की हमारी सम्पदा हैं, सो इस नाते वे हमारे पूर्ण नागरिक हैं। ज़िन्दा रहने व सम्मानजनक ढंग से आगे बढ़ने हेतु उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को समझना। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करना राज्य की संवैधानिक ज़िम्मेदारियां हैं और इन्हें सुनिश्चित कराना समाज की ज़िम्मेदारी बनती है। हमारे सम्मुख असली चुनौती है अपने बच्चों तक पहुंचना व उन्हें सुन पाना, समझ पाना। हमें उन्हें अपने दायरे में अंदर हर तरीके से लाना ही होगा। हमारी सरकार के पास बच्चों के लिये धन की कमी है, पर वर्ष 2008–09 के बजट में इसी सरकार नें कम्पनियों–खास तबके के लोगों के लिये 4,14,099 करोड़ रूपये की छूट दी, जो वर्ष 2009–10 में बढ़कर 5,02,229 करोड़ रूपये हो गई। ये सार्वजनिक संसाधन किसे और कितने मिलेंगे, यह राजनीति से ही तय होता है और जिन पर राजनीति समझौता करके चुप्पी साध लेती है, उन मसलों पर अफसरशाही सिर रखकर सोती है। कानूनी हक मान लिये जाने का मतलब यह नहीं कि वह मिल ही जायेंगे। हक मिलेंगे या नहीं या किस हद तक मिलेंगे, यह भी राजनीति से ही तय होता है। आप शिकायत कर सकते हैं, पर उस पर कार्यवाही होगी

वस्तु नहीं हैं बच्चे

बच्चे एक पूर्ण इकाई हैं। व्यवस्था और समाज के विचार, व्यवहार, विकास और तंत्र में बच्चों की वस्तु से ज्यादा हिस्सेदारी है। बच्चों की जरूरतों को समझना, उनके मुताबिक व्यवहार करना और उन्हें पूरा करना, यही समाज की भूमिका और जिम्मेदारी है।

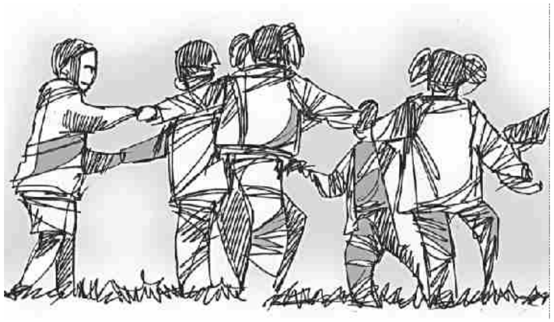

या नही यह राजनीति तय करती है। सरकार अस्पताल और आंगनवाड़ी केन्द्र खोल सकती है पर वे खुलेंगे या नहीं यह राजनीति पर निर्भर करता है। हमें बच्चों और महिलाओं के पोषण के सवाल को एक साथ स्वीकार करना होगा।

बच्चों के कुपोषण का मतलब है कि बच्चों की जरूरत और अधिकारों के प्रति सरकार की राजनैतिक उदासीनता, भ्रष्टाचार, गैर जवाबदेहिता और विकास की वर्तमान प्राथमिकताओं के कारण पैदा हो रही भुखमरी। बेहद महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रदेश की कुल जनसंख्या में से 16 प्रतिशत हिस्सा 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का है, यानी लगभग 1.10 करोड़ की आबादी इस आयु वर्ग में आती है। परन्तु इन बच्चों के लिये देश में केवल एक योजना का संचालन सरकार करती है और वह है एकीकृत बाल विकास योजना। इस पर सरकार अपने कुल व्यय का केवल 0.9 प्रतिशत व्यय करती है। अगर हम इस मुद्दे को बेकार मानते हैं तो जरा यह और जान लें कि भारत में कुपोषण के कारण विकास की दर में 3 से 4 फीसदी कमी आती है, क्योंकि कुपोषण के कारण देश की आधी आबादी विकास और उन्नति में पूरी क्षमता के साथ योगदान नहीं दे पाती है।

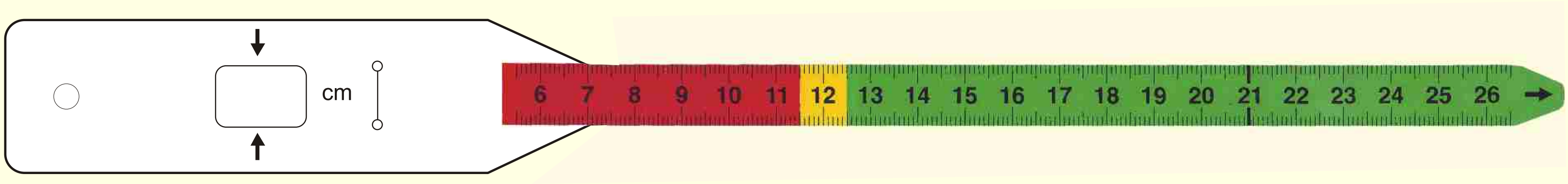

- मध्य ऊपरी भुजा की गोलाई (MUAC) यदि 115 मिमी (11.5 सेमी) से कम यानी लाल रंग में आती है तो यह गंभीर कुपोषण (SAM) दर्शाती है। बच्चे को शीघ्र इलाज हेतु संदर्भित करना चाहिये।
- मध्य ऊपरी भुजा की गोलाई (MUAC) यदि 115 मिमी (11.5 सेमी) और 125 मिमी (12.5 सेमी) के मध्य हो यानी पीले रंग में आती है तो यह कुपोषण के संकट को दर्शाती है व बच्चे की नियमित वृद्धि निगरानी व उस पर ध्यान देने हेतु परामर्श दिया जाना चाहिये।
- मध्य ऊपरी भुजा की गोलाई (MUAC) यदि 135 मिमी (13.5 सेमी) से अधिक यानी हरे रंग में आती है तो यह दर्शाती है कि बच्चा स्वस्थ है।

उन नम आँखों में
आँखें डाल कर देखो
वहीं नज़र आएगी
भूख की परिभाषा तुम्हें,
उनके शरीर पर उभर आई
नसों को जोड़ दो किसी भी कोने से
तुम्हें नज़र आ जाएगा
भूख का चेहरा भी,
भूख छीन लेती है
खड़े होने की ताकत

और खिलखिलाने की भी,
जिन्दगी का जोड़-घटाना
सब कुछ बिखर जाता है
जब भूख पसर जाती है
खून के कतरों में,
छोटी-छोटी आँखों से ओझल हैं
आसमान छूती
चमचमाती इमारतों के गुम्बद,
उजाला तो आता है
चंद्रमा सी गोल मीठी रोटी से,

जो छीन ली है
तुमने उनके हाथ से,
और फिर,
वे चले जाते हैं
इस दुनिया से भूखे ही
बिना अहसास किये
भरे पेट होने का सुख,
और बिना जाने
किस उजाले की बात
तुम करते रहे.

हमारा समाज भूख की स्पष्ट अभिव्यक्ति अपेक्षा रखता है लेकिन वह बचपन के किसी भी चरण पर बच्चों की भाषा नहीं समझ पाता है। बच्चे अपनी आँखों से बोलते हैं, अपने हाथ-पाँव पटक-झटक रोते हुए अपनी माँग रखते हैं, लेकिन जो बच्चे लगातार भूखे रहे आते हैं उनकी आँखें तक बोलना बंद कर देती हैं। वे अपने हाथ-पाँव इधर-उधर नहीं फेंक पाते हैं। भूख व भुखमरी की वेदी पर लगातार बलि चढ़ते ये बच्चे हमें इस बात पर पछताने को मजबूर करते हैं कि हम उनकी बोली न समझ सके, उनके अस्तित्व को ही नकार बैठे।

विकास संवाद